नरोत्तमदास कृत

5166

सुदामा-चरित



नरोत्तमदास कृत

सुदामाचरित

सम्पादक
डा० मोहनलाल 'रत्नाकर'
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग
भगतसिंह कालेज, दिल्ली



ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति
नई दिल्ली-२ — मसूरी

कविवर नरोत्तमदास और उनका सुदामा चरित

नरोत्तमदास भक्तिकालीन कवि हैं। भक्तिकाल को हिन्दी-साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल माना जाता है। यह काल अनुभूति की गहन अभिव्यक्ति तथा भावप्रवणता के लिए विख्यात है। कविवर नरोत्तमदास की काव्य-रचना में भी ये विशिष्टताएँ चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई हैं। उनकी अमरकृति 'सुदामा-चरित' है, जिसकी स्तुति अनेक विद्वानों ने की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"यद्यपि यह छोटा है पर इसकी रचना बहुत सरस और हृदय-ग्राहिणी है और कवि की भावुकता का परिचय देती है। भाषा भी बहुत ही परिमार्जित और व्यवस्थित है। बहुतेरे कवियों के समान भरती के शब्द और वाक्य इसमें नहीं हैं।" कविवर नरोत्तमदास की अन्य रचनाओं के नाम हैं—'ध्रुव-चरित,' 'नाम संकीर्तन', और 'विचारमाला।' 'ध्रुव-चरित' के अभी तक केवल अट्ठाईस छन्द ही उपलब्ध हुए हैं। ये छन्द 'रसवंती' पत्रिका के अप्रैल १९६८ के अंक में प्रकाशित हो चुके हैं। 'विचार माला' और 'नाम संकीर्तन' की पाण्डुलिपियाँ अनुपलब्ध हैं; इनका उल्लेख हमें नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी की खोज रिपोर्ट में मिलता है। वस्तुतः नरोत्तमदास का महत्त्व रचनाओं की संख्या से नहीं वरन् उनकी काव्य-कला से आँका जाएगा। उनकी काव्य-रचना में जो हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना, स्वाभाविक चित्रण, अनुभूति की गहनता, भावप्रवणता और वर्णन-शैली का अद्भुत चमत्कार मिलता है, वह उन्हें अमरता प्रदान करने को लिए पर्याप्त है।

कविवर नरोत्तमदास के जीवन-वृत्तान्त से सम्बद्ध बहुत कम जानकारी मिलती है। इस दृष्टि से वे हिन्दी के एक अविज्ञापित कवि हैं। उन्होंने आत्म-विज्ञापन की भावना को निरर्थक समझते हुए अपनी रचनाओं में अपना जीवन चरित्र देना आवश्यक समझा है। वे उन भारतीय साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व को अपनी कृतियों में घुला-मिला देने में अधिक गौरव अनुभव किया; जो भौतिक प्रतिष्ठा के आकाँक्षी न थे। फलतः जनश्रुतियों या बाह्य साक्ष्य के आधार पर ही हमें उनका अधूरा जीवन-वृत्तान्त मिलता है। शिवसिंह सेंगर अपनी रचना 'शिवसिंह सरोज' में नरोत्तमदास के विषय में केवल इतना ही लिखते हैं कि वे सं० १६०२ तक जीवित थे। वे कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। जार्ज ग्रियर्सन उनका जन्मकाल सं० १६१० मानते हैं। मिश्रबन्धुओं ने उनकी अमर रचना 'सुदामा-चरित' का रचनाकाल सं० १५८२ माना है, जो असंगत प्रतीत होता है। शिवसिंह सेंगर और जार्ज ग्रियर्सन के मत अपेक्षाकृत अधिक समीचीन कहे जा सकते हैं और उनके आधार पर 'सुदामा-चरित' का रचनाकाल सं० १५८२ के स्थान पर सन् १५८२ (सं० १६३६) मान सकते हैं। उससे उनकी यह रचना उनके जीवन के मध्याह्न में निर्मित हो सकती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी रचना 'हिन्दी-साहित्य' के अन्तर्गत 'सुदामा-चरित' के लोकप्रिय कवि नरोत्तमदास का जन्म सन् १५४५ मानते हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार उनका जन्म सीतापुर जिले के बाड़ी नामक स्थान पर हुआ था। इस दिशा में अनुसंधान अपेक्षित है, उनके जन्म, जीवन-घटनाओं, शिक्षा-दीक्षा, आजीविका, रचनाकाल तथा देहावसान के सम्बन्ध में अभी अन्तिम रूप से कुछ कहना कठिन है। इस समय हम उनके व्यक्तित्व की जो जानकारी उनकी अमर निधि 'सुदामा-चरित' से प्राप्त कर सकते हैं वही हमारे आत्म-सन्तोष का मुख्य आधार है। सत्य तो यह है किसी भी व्यक्ति की अमर कीर्ति उसकी काव्य-रचना में व्यंजित भाव-सम्पत्ति में निहित होती है न कि आत्म-विज्ञापन में। इस कसौटी पर कविवर नरोत्तमदास की अमरता में सन्देह नहीं किया जा सकता है।

'सुदामा-चरित' की भाव-व्यंजना और कला-सौष्ठव की प्रशंसा अनेक

विद्वानों ने की है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध इस अनमोल रचना के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह एक अत्यन्त सरस रचना है और इसका रचियता एक सहृदय कवि है। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में—"कथा संगठन, नाटकीय विधान, भाव, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से नरोत्तमदास कृत 'सुदामा-चरित' श्रेष्ठ रचना है।" आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी नरोत्तमदास में उच्चकोटि का कवित्व देखते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार—"हिन्दी में कुछ कवियों ने बहुत कुछ थोड़े छन्दों के आधार पर जितनी अधिक ख्याति प्राप्त की है उनकी मण्डली में नरोत्तमदास का भी एक नाम है।" इस प्रकार 'सुदामा-चरित' कविवर नरोत्तमदास की अमर कीर्ति का मुख्य आधार और हिन्दी-जगत की अनमोल सम्पत्ति हैं। इसमें कवि का व्यक्तित्व एकाकार हो गया है, इसके हृदयग्राही चित्र, मानवीय मनोभावों की मर्मस्पर्शी व्यंजना, मित्र-वत्सलता का आदर्श, नाटकीय शैली का सौष्ठव यथार्थ का घना स्पर्श और अनुभूति की अद्भुत व्यंजना पाठकों एवं आलोचकों को अपनी ओर बरबस आर्कषित कर लेती है।

सुदामा-चरित का प्रतिपाद्य विषय

कविवर नरोत्तमदास विरचित 'सुदामा-चरित' का प्रतिपाद्य-विषय सुदामा का दारिद्रय वर्णन और श्रीकृष्ण की आदर्श मैत्री है। सुदामा एक भिक्षोपजीवी ब्राह्मण है। वह सांसारिक सुखों से उदासीन, भाग्यवादी, स्वाभिमानी तथा कुँठाग्रस्त है। निर्धनता की निर्दय मार खाते-खाते उसकी धन-लालसा कुंठित हो जाती है। उसकी विभिन्न मनःस्थितियों का मार्मिक निरूपण और श्रीकृष्ण की मित्र-वत्सलता की उदात्त भावना की प्रतिष्ठा ही कवि को अभीष्ट है। श्रीकृष्ण अपने बालसखा सुदामा को जो अपार सम्मान, धन-वैभव तथा स्नेह-सम्पत्ति देते हैं, वह अत्यन्त गौरवमयी, अनुकरणीय तथा आदर्श-मैत्री का अपूर्ण उदाहरण है। कवि ने उसे हृदयस्पर्शी व्यंजना देकर अपनी रचना को अमरता प्रदान की है।

सुदामा परम्परागत ब्राह्मण-धर्म के निर्वाह का संकल्प लिए धन-दौलत से

कोसों दूर रहता है। वह भिक्षा माँगकर उसीसे अपने जीवन का निर्वाह करना चाहता है; हरिभजन की प्रबल लालसा उसके मन में बसी हुई है। किन्तु उसकी पत्नी सुबुद्धि इस दयनीय अवस्था में न तो स्वयं रहना चाहती है और न अपने पति को ही रहने देना चाहती है। उसे जैसे ही पता चलता है कि द्वारिकापति श्रीकृष्ण उसके पति के सहपाठी तथा मित्र हैं, वह उस स्वर्णावसर का लाभ उठा लेना चाहती है। कवि उसी के माध्यम से सुदामा के दारिद्रय का हृदय-विदारक चित्रण करके उसे श्रीकृष्ण के पास भेजना चाहता है। सुदामा-पत्नी के शब्दों में—

"कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत बितीत गई सिसियातहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि-सौं, तो काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर से कबहूँ न गयौ पिय, टूटौ तयौ अरु फूटी कठौती॥"

'सुदाम-चरित' का रचयिता अपने आपको सुदामा के साथ एकाकार करता प्रतीत होता है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि इस निर्धन ब्राह्मण का आर्थिक संकट समाप्त हो, वह कुंठाग्रस्त न रहे। इसीसे उसने सुबुद्धि की तर्क-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया है। वह उसके कुंठित मन में धन-लालसा को जगाकर, उसे सुखी, सम्पन्न तथा आशावादी बनाना चाहती है। सुदामा कुपित होते हैं, फिर भी सुबुद्धि की तर्क-शक्ति कुंठित नहीं होती है और वह व्यंग-बाण चलाने में भी नहीं चूकती—

"जो पै सारो जन्म दरिद्र ही सतायो,
तो पै कौन काज आई कृपानिधि कर मित्रई।"

दरिद्र सुदामा पत्नी के सबल तर्कों से परास्त होकर द्वारिकापुरी की ओर प्रस्थान करता है। उस समय कैसी दीन-हीन स्थिति थी, इसका एक कारुणिक चित्र द्रष्टव्य है—

"सीस पगा न झगा तन में प्रभु जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी औ लटी दुपटी अरु पांय उपानह की नहिं सामा॥

द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यौ चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥"

सुदामा के दारिद्रय वर्णन के उपरान्त कविवर नरोत्तमदास श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री के भव्य रूप की प्रतिष्ठा करते हैं। दरिद्र सुदामा और द्वारिका-नरेश श्रीकृष्ण के जीवन-स्तर में धरती एवं आकाश का अन्तर विद्यमान था, जिसे श्रीकृष्ण की मित्र-वत्सलता समाप्त कर देती है। उन्हें जैसे ही अपने बाल-सखा के आगमन का समाचार मिलता है, वे समस्त कामकाज को छोड़कर बड़े आदर-सत्कार के साथ उससे मिलते हैं। उसकी दयनीय दशा देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है, वे आँखों में प्रेम-अश्रु भर उसकी कुशलता का समाचार पूछते हैं। इसे देखकर सुदामा की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती है। वह उनकी आदर्श-मैत्री के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है—

"बोल्यौ द्वारपाल 'सुदामा नाम पांडे सुनि,
छाँडै सबै राजकाज जी की गति जानै को?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेंटे लपटाय हिय ऐसे दुख मानै को?
नैन दोऊ जल भरि पूछत कुसल हरि,
बिप्र बोल्यौ बिपदा में मोहि पहिचानै को?"

मैत्री का उदात्त आदर्श स्थापित करने के निमित्त श्रीकृष्ण अपने मित्र को अन्तःपुर में ले जाते हैं, सोने की चौकी पर बैठाकर अपने हाथों से उसके पाँव धोते हैं, जल के स्थान पर उनके नेत्र-अश्रु, पाँव धोने का कार्य कर एक अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

"देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिकै करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुऔ नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥"

श्रीकृष्ण का यह मैत्री-आदर्श स्तुत्य है; उनकी यह उदारता अनुकरणीय है। वे अपने मित्र के दारिद्रय को देखकर, उससे घृणा नहीं करते वरन् उसे भी अपने समान वैभवशाली बनाने का प्रण करते हैं। प्रत्युपकार की भावना से रहित

होकर वे द्वारिकापुरी जैसी अति अभिराम सुदामापुरी का निर्माण कराते हैं। मित्र के स्वाभिमान को आघात न पहुँचे, इसलिए वे यह सभी कुछ गुप्त रूप से करना अधिक उपयुक्त समझते हैं। प्रत्यक्ष रूप से वे सुदामा को कुछ नहीं देते हैं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इतना अधिक वैभव दे देते हैं कि वह अपने घर पर जाकर आश्चर्य चकित रह जाता है। उसे अपने गाँव, घर, पत्नी आदि को पहचानने में बड़ी कठिनाई होती है। उसके इस अपार वैभव को देखकर देवराज इन्द्र भी लजा जाते हैं।

कृष्ण भक्ति-काव्य-परम्परा में आदर्श-मैत्री की जैसी सजीव एवं मर्मस्पर्शी प्रतिष्ठा 'सुदामा-चरित' के निर्माता ने की है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। कृष्ण-काव्य में ही नहीं अपितु विश्व-काव्य में भी आदर्श-मैत्री के ऐसे उदाहरण इने-गिने ही मिल सकते हैं। कविवर नरोत्तमदास ने मैत्री के उदात्त आदर्श की दृष्टि से कृष्ण-काव्य के गौरव में वृद्धि की है। सूर, नन्ददास आदि महाकवियों ने श्रीकृष्ण के बाल-रूप एवं तरुण-रूप के रूप-माधुर्य तथा प्रेम-भावता को ही प्रमुखता दी थी; उनके मित्र-रूप को अधिक नहीं उभारा था। 'सुदामा-चरित' के निर्माता ने श्रीकृष्ण के इस महिमामय रूप को प्रतिष्ठित करके एक चिरस्मरणीय कार्य किया है।

सुदामा-चरित की कथावस्तु

कविवर नरोत्तमदास विरचित **'सुदामा-चरित' की कथा का आधार** 'श्रीमद्‌भागवत' का दशम् स्कन्ध है। कवि ने श्रीमद्‌भागवत में वर्णित कथा को ही नाटकीय पद्धति में प्रस्तुत कर, उसमें कौतूहल, रोचकता नवीनता तथा प्रभावोत्पादकता का संचार किया है। श्रीमद्‌भागवत के अनुसार सुदामा एक निर्धन ब्राह्मण थे, वे अपने भाग्य से सन्तुष्ट थे किन्तु उनकी पत्नी यह नहीं चाहती थी कि वे निर्धन बने रहें। उसे इस बात का ज्ञान था कि द्वारिकापति श्रीकृष्ण और उसके पति सुदामा दोनों सहपाठी रह चुके हैं। दोनों ने उज्जयिनी में संदीपन ऋषि के आश्रम में एक साथ विद्याध्ययन किया था। एक दिन सुदामा की पत्नी ने अपनी निर्धनता से पीड़ित होकर अपने पति से कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण

आपके मित्र हैं; वे महादानी हैं, आप उनके पास जाएँ और वहाँ जाने से आपकी निर्धनता समाप्त हो जाएगी। सुदामा ने न चाहने पर भी, पत्नी के बार-बार आग्रहपूर्वक कहने पर द्वारिकापुरी जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने सोचा कि और कोई लाभ हो न हो, इसी बहाने से भगवान् के दर्शन का परम लाभ तो उन्हें मिल ही जाएगा। सुदामा के कहने पर उनकी पत्नी ने पड़ोस से चार मुट्ठी चावल लाकर दिए, जिससे वे अपने मित्र को उन्हें उपहार स्वरूप दे सकें।

सुदामा वह चार मुट्ठी चावल लेकर द्वारिका पहुँचे, वहाँ श्रीकृष्ण ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। उन्हें गले लगाकर मिले, पलंग पर बैठाया, पाँव धोये, उनकी आरती उतारी। उनसे मुस्कराते हुए वह उपहार माँगा जो उनकी पत्नी ने श्रीकृष्ण के लिए दिया था। सुदामा संकोचवश उसे देना नहीं चाहते थे, किन्तु अन्तर्यामी प्रभु अपने भक्त के हृदय की बात जान गये। उन्होंने सुदामा को देवदुर्लभ सम्पत्ति देने का निश्चय किया और उनके चिथड़े में बंधे चावलों को छीन लिया, दो मुट्ठी चावल मुँह में डाल लिए, तीसरी मुट्ठी चावल जब मुँह में डालने लगे तो उनकी पत्नी रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया। सुदामा यह सभी कुछ देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए, उस रात्रि उन्हीं के पास रहे। श्रीकृष्ण ने सुदामा को विदा करते समय प्रत्यक्ष रूप में कुछ भी न दिया, उससे वे तनिक भी दुःखी न हुए, वरन् उन्होंने सोचा कि श्रीकृष्ण ने उन्हें कुछ न देकर अच्छा ही किया है, धन माया है, वह मनुष्य को ईश्वर से दूर करती है। सुदामा प्रभु का गुणगान करते हुए अपने घर पहुँचे, वहाँ आने पर उन्हें सारी परिस्थिति परिवर्तित मिली, वे पहले तो चकित हुए किन्तु शीघ्र ही प्रभु की लीला को समझ गए।

श्रीमद्‌भागवत और सुदामा-चरित की कथा में अन्तर—निस्सन्देह 'सुदामा-चरित' की कथा वस्तु का आधार 'श्रीमद्‌भागवत्' है, किन्तु कविवर नरोत्तमदास ने उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत न करके, उसे अपेक्षाकृत अधिक रोचक, नाटकीय तथा मनोवैज्ञानिक बनाया है। 'श्रीमद्‌भागवत' एवं 'सुदामा-चरित' की कथा में मिलने वाले अन्तर हैं—

१. 'श्रीमद्‌भागवत' में सुदामा की पत्नी को पहले से ही इस बात का ज्ञान

था कि उसके पति और श्रीकृष्ण न एक साथ शिक्षा ग्रहण की थी और वे परस्पर मित्र हैं। 'सुदामा-चरित' में स्वयं सुदामा अपनी पत्नी को यह सभी कुछ बताते हैं। इससे कवि को सुदामा की दीन-हीन दशा का वर्णन करने, सुदामा-पत्नी की मनोवैज्ञानिक स्थिति का उद्घाटन करने तथा सुदामा की त्यागमयी मनोवृत्ति का विश्लेषण करने का अच्छा अवसर मिलता है। वह नाटकीय-पद्धति में इन दोनोंके चरित्रपर प्रकाश डालते हैं; दोनों के तर्क-वितर्क इस काव्य-रचना में सरसता तथा कौतूहल का संचार करते हैं।

२. 'श्रीमद्भागवत' में सुदामा धन-प्राप्ति की इच्छा से नहीं, वरन् भगवान् के दर्शनार्थ द्वारिका जाते हैं। वे पत्नी की बात ही रखना चाहते हैं, उससे सहमत नहीं होते हैं। 'सुदामा-चरित' सुदामा के ब्रह्मज्ञानी, विरक्त तथा त्यागी होते हुए भी पत्नी की इच्छा से सहमत होकर द्वारिका जाते हैं और वहाँ से धन लाना उनका उद्देश्य था। वे केवल दर्शनार्थ श्रीकृष्ण के पास नहीं जाते हैं। कवि ने इस अन्तर के द्वारा सुदामा को एक साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है, जो अधिक स्वाभाविक है।

३. 'श्रीमद्भागवत' में सुदामा को जब श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं देते हैं तो वे उससे प्रसन्न होते हैं; मार्ग में जाते हुए यह सोचते हैं कि धन माया है, माया मनुष्य को प्रभु से दूर करती है। 'सुदामा चरित' के सुदामा-श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष रूप में कुछ न पाकर कभी श्रीकृष्ण पर और कभी अपनी पत्नी पर झुँझलाते हैं। वे श्रीकृष्ण को कोसते हैं। इस परिवर्तन से भी कवि ने सुदामा के चरित्र को अधिक स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक बनाया है।

४. 'श्रीमद्भागवत' में सुदामा द्वारिका से लौटकर अपनी पत्नी का धन्यवाद नहीं करते हैं, वे सारे परिवर्तन के मूल में प्रभु की लीला को देखते हैं। 'सुदामा-चरित' में सुदामा घर लौटकर बड़ी कठिनाई से सारा परिवर्तन समझते हैं और अपनी पत्नी का धन्यवाद करते हैं, क्योंकि उसी की प्रेरणा से वे द्वारिका गए और उन्हें अपार धन-वैभव मिला। वस्तुतः कवि ने सुदामा को केवल भक्त रूप में न लेकर मानव-रूप में चित्रित किया है, जिससे वह मानवीय संवेदनाओं को जागृत कर सके।

सुदामाचरित की कथावस्तु की समीक्षा

आधार की दृष्टि से काव्याचार्यों ने कथावस्तु के तीन भेद माने हैं—प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्रित। 'सुदामा-चरित' की कथावस्तु मुख्यतः प्रख्यात है। प्रख्यात कथावस्तु का आधार इतिहास, पुराण या जनश्रुति होता है। 'सुदामा-चरित' की कथावस्तु का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत पुराण है। कविवर नरोत्तमदास ने अपनी इस अमर कृति के लिए एक ओर श्रीमद्भागवत पुराण के दशम् स्कन्ध से कथानक का चयन किया और दूसरी ओर अनेक **मौलिक उद्भावनाएँ** करके अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। वे मौलिक उद्भावनाएँ हैं—

१. सुदामा की निर्धनता को मार्मिकता प्रदान करने के लिए हठात एक दिवस निर्धन सुदामा के मुख से यह कहलवाना कि वे द्वारिकापति श्रीकृष्ण के सहपाठी तथा मित्र हैं।

२. सुदामा के भक्त-रूप के साथ-साथ, उनके मानव-रूप को भी चित्रित करना; उनके मन में दबी धन-लालसा को जगाना, धन न मिलने पर उनका श्रीकृष्ण को कोसना, शाप देने को तत्पर हो जाना, अपनी पत्नी पर झुँझलाना, जिसने उन्हें बार-बार आग्रह करके द्वारिकापुरी भेजा था।

३. घर लौटकर बड़ी कठिनाई से अपने घर, पत्नी आदि को पहचानना और पत्नी के प्रति आभार प्रदर्शित करना, जिसकी प्रेरणा के अभाव में उन्हें वह अपार-वैभव नहीं मिल सकता था।

४. सुदामा की पत्नी सुशीला के नाम को बदलना, उसे सुबुद्धि नाम देना। श्रीमद्भागवत में सुदामा की पत्नी का नाम सुशीला है, जिसे कविवर नरोत्तम-दास ने बदल दिया है। वे सुशीला के स्थान पर सुबुद्धि नाम का प्रयोग करते हैं। इस नाम परिवर्तन के पीछे सुदामा-पत्नी का महत्त्व निहित है। सुदामा की निर्धनता को दूर कराने में उनकी पत्नी का बुद्धि-वैभव अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है। वह अपने तर्कों द्वारा विरक्त एवं सन्तोषी ब्राह्मण सुदामा के मन में धन-लालसा को जागृत करती है। उसी की प्रेरणा से वे द्वारिकापुरी

जाते हैं।

५. सुदामा जब तीन दिनों तक निरन्तर चलते-चलते थककर सो जाते हैं, तो भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें निद्रावस्था में ही गोमती के तट पर पहुँचा देते हैं। 'सुदामा-चरित' में वर्णित इस घटना का भी 'श्रीमद्भागवत' में स्वतन्त्र रूप से उल्लेख नहीं हुआ है।

उपर्युक्त मौलिक उद्भावनाओं ने 'सुदामा-चरित' की कथावस्तु के महत्त्व को बढ़ाया है। इस काव्य-रचना को इतना अधिक मर्मस्पर्शी बनाने में इन मौलिक उद्भावनाओं का सहयोग स्तुत्य है।

'सुदामा-चरित' में कथा-विकास की पाँच अवस्थाओं—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम में से चार का निर्वाह बड़ी सफलता के साथ हुआ है। 'नियताप्ति' की अवस्था, जहाँ पाठकों को ज्ञात हो जाता है कि फल की प्राप्ति निश्चित है, उसे कविवर नरोत्तमदास ने छोड़ दिया है। उन्होंने इस अवस्था को छोड़कर अपनी रचना में कौतूहल का संचार किया है। वे प्राप्त्याशा के पश्चात् फलागम अवस्था का वर्णन करके पाठकों को चकित कर देते हैं। उससे भी काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि हुई है और रचना का महत्त्व बढ़ा है।

'सुदामा-चरित' की कथावस्तु पूर्णतः सुगठित, रोचक, मार्मिक, प्रवाह-मयी तथा मौलिक उद्भावनाओं से युक्त है। वह मूल संवेद्य के सर्वथा अनु-रूप है।

सुदामा-चरित की पात्र-योजना

'सुदामा-चरित' की पात्र-योजना अत्यन्त व्यवस्थित, स्वाभाविक तथा सार्थक है। कविवर नरोत्तमदास ने अपने इस खण्ड-काव्य में मुख्य रूप से तीन पात्रों की योजना की है। वे मुख्य पात्र हैं—सुदामा, सुबुद्धि और श्रीकृष्ण। इन पात्रों के चरित्र-चित्रण में नरोत्तमदास का कवि-कौशल द्रष्टव्य है। वे मानव-मनोविज्ञान के पारखी हैं, उन्होंने मानवीय दुर्बलताओं को निकटता से देखा और दिखाया है। वे अपने पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को कलात्मक वाणी देने में अत्यन्त सफल

रहे हैं। उन्होंने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिए नाटकीय-पद्धति को विशेष प्रश्रय दिया है। पात्रों के व्यक्तित्त्व को उभारने के लिए उनके संवादों कार्य-कलापों, तर्क-वितर्कों आदि का पूरा-पूरा सदुपयोग करते हैं। उनकी चरित्र-चित्रण कला यथार्थ और आदर्श दोनों को समान महत्त्व देती है, उसमें जहाँ आदर्श को प्रतिष्ठित करने की ललक है वहाँ यथार्थ को भी समुचित महत्त्व देने की तत्परता उपलब्ध होती है। वे पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में अपनी मौलिक काव्य-प्रतिभा का परिचय देते हैं।

सुदामा—'सुदामा-चरित' का केन्द्रीय पात्र सुदामा, इस खण्ड-काव्य का नायक है। नरोत्तमदास ने उसी की निर्धनता, मनःस्थिति तथा फल-प्राप्ति का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। वह एक ओर आदर्श ब्राह्मण है, भाग्य में उसका अटूट विश्वास है, वह सांसारिक सुखों के प्रति उदासीन है और स्वाभिमान उसमें कूट-कूट कर भरा हुआ है। दूसरी ओर वह एक साधारण मानव है, उसमें धन-लालसा विद्यमान है और वह भी मानवीय दुर्बलताओं से ग्रस्त है। कवि उसके व्यक्तित्व के इन दोनों पहलुओं का बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण करता है।

सुदामा अपने प्रथम रूप में अत्यन्त निर्धन, सन्तोषी, तेजस्वी तथा हरि-भक्त है। वह भिक्षावृत्ति से अपना निर्वाह करता है। वर्षों निर्धनता में रहते-रहते वह उसी को अपना जीवन मान लेता है। उसके विचारानुसार ब्राह्मण का धन तो मात्र भिक्षा है। वह अपने ये विचार पत्नी के सम्मुख रखता है—

"औरनि को धन चाहिए बावरि, ब्राह्मण को धन केवल भिक्षा।"

भाग्यवादी सुदामा अपनी दीन-हीन दशा के लिए किसी को भी दोषी नहीं मानता है। उसकी धारणा है कि मनुष्य को सुख-दुःख, धन-वैभव आदि की प्राप्ति भाग्य से ही होती है। भाग्य का लेखा न कोई मिटा सका है और न कोई मिटा सकेगा। वह अपनी पत्नी को यह तथ्य समझाता हुआ कहता है—

"पैहें कहाँ ते अटारी अटा जिनके विधि दीन्ही है टूटी-सी छानी।
जो पै दरिद्र लिख्यौ है ललाट तौ काहू पै मेटि न जात अजानी॥"

सुदामा एक अत्यन्त स्वाभिमानी ब्राह्मण है। 'सुदामा-चरित' में उसका यह

स्वाभिमानी व्यक्तित्व अनेक स्थलों पर व्यंजित हुआ है। उसकी पत्नी जब बार-बार उसे द्वारिकापुरी जाने के लिए कहती है तो उसका स्वाभिमानी ब्राह्मणत्व उसे यह कहने के लिए बाध्य करता है—

"सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय ! ताको कहा अब देति है सिच्छा।"

उसके विचार से दुःख सह लेना कहीं अच्छा है, किन्तु धन-लालसा को लेकर मित्र के द्वार पर कभी नहीं जाना चाहिए। मित्रता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसके यहाँ जाकर यदि कुछ खाओ तो उसे भी अपने घर बुलाकर खिलाओ—

"मित्र के मिले में वित चाहिए परस्पर,
मित्र के जो जेंइए तो आप हू जेंवाइए।"

सुदामा में भक्ति-भावना का चरमोत्कर्ष भी विद्यमान है। वह सांसारिक धन-वैभव के प्रति उदासीन है और प्रभु-भक्ति ही उसे अभीष्ट है। वह अपनी प्रभु-भक्ति को भी अपनी निधि मानता है—

"मेरे हिय हरि के पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा।"

सुदामा को उसके उच्च आदर्श करुणा की साक्षात् प्रतिमा बना देते हैं। वह यथार्थ के आगे झुकने के लिए विवश हो जाता है। उसकी करुणाजनक स्थिति का उद्‌घाटन करते हुए द्वारपाल कहता है—

"सीस पगा न झगा तन में प्रभु,
जानें को आहि, बसे केहि ग्रामा,
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु
पायं उपानहु को नही सामाँ।"

सुदामा का चरित्र मानवीय दुर्बलताओं से युक्त एक साधारण मानव के रूप में भी अपना वैशिष्ट्य लिए हुए है। वर्षों निर्धनता के कोड़े सहते-सहते उसके अन्दर धन-लालसा दब-सी जाती है, किन्तु सुबुद्धि के बार-बार समझाने, उकसाने तथा प्रेरित करने पर वह कुंठित लालसा पुनः तीव्र हो जाती है। धन-वैभव से उदासीन रहने वाला सुदामा द्वारिकापुरी के वैभव को देखकर चकित होता है और मन ही मन में धन-सम्पदा पाने की प्रबल आकांक्षा रखने लगता है। विदाई

के समय श्रीकृष्ण से कुछ न पाकर वह सन्तोषी ब्राह्मण अपने घनिष्ठ मित्र को शाप तक देने को तत्पर हो जाता है। वापस घर लौटते हुए वह कभी अपनी पत्नी पर झुँझलाता है तो कभी श्रीकृष्ण पर। वह अपने मन ही मन में सोचता है कि आखिर द्वारिकापति हैं तो वही न जो अपने बाल्यकाल में दही माँग-माँग कर खाते थे। ऊँचा पद पा लेने से दिल बड़ा नहीं हो जाता। सुदामा के चरित्र का यह परिवर्तन और तीखी प्रतिक्रिया उसके मानवीय रूप को उभारती है।

सुबुद्धि—'सुदामा चरित' का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र सुदामा की पत्नी सुबुद्धि है, जिसे श्रीमद्भागवत में सुशीला नाम से अभिहित किया गया है। वह इस खण्ड-काव्य की नायिका है और उसी की सद्प्रेरणा से ही नायक सुदामा को फल-प्राप्ति होती है। वह एक पतिव्रता नारी है, उसमें व्यवहार कुशलता, मानव-स्वभाव को समझने की अद्भुत क्षमता, धन-वैभव के प्रति नारी सुलभ आसक्ति, अचूक तर्क-शक्ति तथा जीवन के यथार्थ को समझने की तीव्र प्रतिभा विद्यमान है। कविवर नरोत्तमदास ने उसका चरित्र-चित्रण वास्तविकता के धरातल पर, नारी मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर अत्यन्त नियुणता के साथ किया है। वे भक्ति-भाव को समुचित महत्त्व देते हुए, मानवीय मनोभावों को व्यंजित करने में पर्याप्त सफल रहे हैं। उनकी चरित्र-चित्रण कला का सौष्ठव सराहनीय है।

कविवर नरोत्तमदास सुदामा की पत्नी के नाम-परिवर्तन में अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य प्रदर्शित करते हैं। 'श्रीमद्भागवत' के सुशीला नाम से 'सुदामा-चरित' का सुबुद्धि नाम कहीं अधिक सार्थक तथा उपयुक्त है। सुदामा की पत्नी के चरित्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता उसका बुद्धि-चातुर्य है। वह अपने पति सुदामा को घोर निर्धनता से मुक्ति दिलाने के लिए अपने बुद्धि-वैभव का पूरा-पूरा सदुपयोग करती है। भाग्यवादी सुदामा, उसके सबल तर्कों से परास्त होता है और अन्त में उसके प्रति आभार प्रकट करते हुए कहता है—

"जो पै पतिव्रता तू न देती उपदेश मोहिं,
एती कृपा द्वारिकेश मो पै कब करते।"

सुबुद्धि पतिव्रता नारी है, उसका यह पातिव्रत्य घोर निर्धनता एवं अपार सम्पन्नता दोनों में समान रूप से बना रहता है। वह निजी सुख के निमित्त नहीं

वरन् अपने पति को घोर आर्थिक संकटों से छुटकारा दिलाने के लिए द्वारिकापति श्रीकृष्ण के पास भेजना चाहती है। वह पति-अनुरागिनी है, उसका पारिवारिक जीवन-स्तर ऊँचा उठाना चाहती है। सुगृहिणी-धर्म का पालन करने के लिए ही वह घर की यथार्थ स्थिति से पति को अवगत कराती है—

"कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती,
सीत बितीत भयौ सिसियातहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती।"

सुबुद्धि व्यवहार कुशल नारी है, वह मिथ्या आदर्शों पर न तो स्वयं बलि होना चाहती है और न अपने पति सुदामा को बलि होते देखना चाहती है। उसमें जीवन जीने की साध है, यह यथार्थ को अपनी आँखों से ओझल नहीं करना चाहती। यही कारण है कि वह धन-वैभव को भी जीवन के लिए आवश्यक मानती है। उसमें अपार तर्क-शक्ति है, वह जिसे ठीक समझती है, उसे पूरा करा लेना चाहती है। उसे जैसे ही पता चलता है कि द्वारिकापति श्रीकृष्ण उसके पति सुदामा के सहपाठी एवं मित्र हैं, वह अनेक प्रकार के तर्कों से समझा-बुझा कर उसे द्वारिका भेजने का निश्चय कर लेती है। वह अपनी सिद्धि के लिए एक के बाद एक तर्क-बाण छोड़ती है, पति के आक्रोश से भी वह हतोत्साहित नहीं होती है। वह पति की निर्धनता को दूर कराने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती है। वह एक ओर श्रीकृष्ण की भक्त-वत्सलता का बखान करती है और दूसरी ओर पति की कृष्ण-मैत्री को चुनौती देती है—

"जो पै सारो जन्म दरिद्र ही सतायो,
तो पै कौन काज आई कृपानिधि की मित्रई।"

सुबुद्धि की व्यवहार-कुशलता उस समय अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो जाती है जब सुदामा द्वारिकापुरी जाने को तत्पर हो जाते हैं किन्तु मित्र को भेंट स्वरूप क्या दें? यह एक नई समस्या खड़ी कर देते हैं। सुबुद्धि इस सुअवसर को हाथ से निकलने नहीं देती, वह तुरन्त पड़ौसिन के घर जाकर पाव सेर चावल ले आती है। उन्हें पोटरी में बाँधकर पति को सौंप देती है, जिससे वह कोई अन्य बहाना न खोज सके। सुदामा-पत्नी की यह व्यवहार कुशलता मानव के सहज स्वभाव से सम्बद्ध है, चतुर मनुष्य अपने सम्बन्धों से लाभान्वित होना भली-

भाँति जानता है। इसी मानवीय मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर सुबुद्धि का चारित्रिक वैशिष्ट्य चरम निखार को प्राप्त करता है। इस प्रकार यथार्थ-दृष्टि और नारी मनोविज्ञान के घने स्पर्श से सुबुद्धि का चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पदक बन गया है।

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण 'सुदामा-चरित' के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। कविवर नरोत्तमदास ने उनका चरित्र-चित्रण लौकिक एवं अलौकिक दोनों आधार भूमियों पर बड़ी कलात्मकता के साथ किया है। वे आदर्श-मैत्री के अपूर्व उदाहरण हैं। उनकी मित्र-वत्सलता असाधारण है, विपत्तिग्रस्त अपने मित्र को अपना सर्वस्व सौंप देना चाहते हैं। उनकी आदर्श-मत्री प्रत्युपकार की भावना से कोसों दूर, चिरस्तुत्य एवं चिरस्मरणीय है। वे द्वारिकापति हैं, उनका चारित्रिक वैशिष्ट्य उनके अलौकिक कृत्यों से अधिक विख्यात है किन्तु इस खण्ड-काव्य में वे मित्र-वत्सलता की दृष्टि से एक अमर चरित्र बन गए हैं। इस रचना के निर्माता ने उनके इस उदात्त रूप को अत्यन्त सफलता के साथ उभारा है।

श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण करते समय कविवर नरोत्तमदास ने उनके लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों को जहाँ बड़ी निपुणता से अंकित किया है, वहाँ सुदामा के चारित्रिक वैशिष्ट्य को दबने नहीं दिया है। उन्हें मानवीय आधार भूमि पर लाकर, अपनी काव्य-कला का उत्कर्ष दिखाया है। वस्तुतः आदर्श-मैत्री की प्रतिष्ठा ही कवि का अभीष्ट है और वह लौकिक धरातल पर अधिक स्वाभाविक निखार पा सकती थी। अपने इस संवेद्य की व्यंजना में वे पूर्णतः सफल रहे हैं।

कृष्ण-काव्य-परम्परा में मुख्यतः श्रीकृष्ण को एक मनमोहक बालक तथा रसिक तरुण के रूप में ही चित्रित किया गया है। उनके आदर्श-मैत्री के उदात्त रूप को सर्वाधिक कुशलता के साथ निरूपित करने का श्रेय 'सुदामा-चरित' के निर्माता को देना समीचीन है। इस रचना में वे मित्र-वत्सलता की साक्षात् प्रतिमा बनकर प्रस्तुत हुए हैं। उन्हें जैसे ही द्वारपाल से बाल्यकाल के मित्र सुदामा के आगमन की सूचना मिलती है, वे मित्र-मिलन की आकाँक्षा लिए दौड़ पड़ते हैं। उन्हें अपनी भी सुध-बुध नहीं रहती है। वे नेत्रों में प्रेम के आँसू भर-

कर, मित्र का कुशल समाचार पूछते हैं। यह सभी कुछ देखकर सुदामा चकित रह जाता है—

"बौल्यौ द्वारपालक 'सुदामा नाम पाँडे सुनि,
छाँड़े सबै राजकाज जी की गति जानै को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेंटे लपटाय हिय ऐसे दुख मानै को ?
नैन दोऊ जल भरि पूछत कुशल हरि,
विप्र बोल्यो विपदा में मोहिं पहिचानै को ?
जैसी तुम कीन्हीं तैसी करै को कृपा के सिंधु !
जैसी प्रीति दीनबन्धु ! दीनन पै आनै को ?"

श्रीकृष्ण के मित्र-वत्सल रूप के साथ-साथ उनके विनोद-प्रिय रूप को भी कविवर नरोत्तमदास ने अति सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। सुदामा के कहने पर उसकी पत्नी ने उसे पाव सेर चावल एक पोटरी में बाँधकर दिए थे। द्वारिकापुरी के अपार वैभव को देखकर, सुदामा संकोच में पड़ गए कि भेंट स्वरूप वह पोटरी श्रीकृष्ण को दें या नहीं। उनकी इस दुविधामय मनःस्थिति को भाँप कर श्रीकृष्ण अपनी विनोद-प्रिय प्रकृति का परिचय देते हैं—

"कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहि न देत।
चाँपि पोटरी काँख में, रहौ कहौ केहि हेत॥

इतना ही नहीं, वे अपने मित्र के संकोच को दूर करने के लिए बाल्य-काल की एक चोरी की घटना का स्मरण कराते हैं। उस पर मधुर व्यंग्य-बाण भी छोड़ते हैं—

आगै चना गुरु-मात दए ते लए तुम चाबि हमैं नहिं दीने।
स्याम कह्यौ मुसुकाय सुदामा सों चोरी की बानि में हो जु प्रबीने॥

'सुदामा-चरित' में श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप को भी कवि ने सुरक्षित रखा है। वे सामान्य मनुष्य नहीं वरन् परब्रह्म हैं, उन्हें दीनबन्धु, पतितपावन आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। उन्होंने संकट में सदा अपने भक्तों की रक्षा की है। उनके इस विराट रूप से सुदामा की पत्नी भली-भाँति परिचित

हैं। इसी से वह अपने पति से द्वारिकापुरी जाने का आग्रह करती है, उसका यह दृढ़ विश्वास है कि वे दीनबन्धु उनकी नौका को भी किनारे लगा देंगे—

"दीनदयाल कौ ऐसोई द्वार है दीनन की सुधि लेत सदाई।
द्रौपदी तें गज तें प्रहलाद तें जानि परी कछु वार न लाई॥"

'सुदामा-चरित' के श्रीकृष्ण अन्तर्यामी भी हैं, वे अपने मित्र की पीड़ा को जानकर कि वह तीन दिन निरन्तर चलते-चलते थककर चूर हो गया है, उसे सोते-सोते में ही को गोमती के तीर पर पहुँचा देते हैं। इसी प्रकार वे अपने मित्र की घोर निर्धनता के निवारण के निमित्त द्वारिकापुरी से भी अधिक सुन्दर सुदामापुरी का निर्माण करा देते हैं। सभी कार्य उनके अति मानवीय रूप को व्यंजित करते हैं। वस्तुतः नरोत्तमदास की काव्य-कला श्रीकृष्ण के लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों का अद्‌भुत सामंजस्य प्रस्तुत करने में ही अपनी सार्थकता समझती है।

सुदामा-चरित का काव्य-रूप

बन्ध के विचार से काव्य के दो भेद किए गए हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रवन्ध काव्य के पुनः तीन भेद माने जाते हैं—महाकाव्य, खण्ड-काव्य और एकार्थकाव्य। इन सभी काव्य-भेदों में 'सुदामा-चरित' को खण्डकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। खण्डकाव्य में किसी महापुरुष के खण्ड जीवन या जीवन की किसी समस्या के किसी विशेष पहलू आदि का चित्रण महाकाव्योचित शैली में होता है। इसमें प्रासंगिक कथाओं का अभाव होता है। इसकी कथा-वस्तु विकास की विविध अवस्थाओं से गुज़रती हुई एक निश्चित उद्देश्य की सिद्धि को पाकर समाप्त हो जाती है। इसका आकार लघु होता है और इसमें कवि की तीव्र अनुभूतियों एवं भाव प्रवणता को विशेष प्रश्रय मिलता है। महा-काव्य के समान इसका प्रारम्भ भी ईश्वर वन्दना, आशीर्वाद, नमस्कार आदि से होता है और इसमें महाकाव्य की कई अन्य विशेषताओं का समावेश भी बड़ी कलात्मकता के साथ किया जाता है। किन्तु नायक के सम्पूर्ण कथावृत्त तथा जातीय जीवन की विस्तृत चर्चा खण्डकाव्य में सम्भव नहीं होती है। इसकी परिधि सीमित होती है, यह एक देशीय होता है। इसे महाकाव्य का एक अंग भी

माना जा सकता है, किन्तु यह अंग अपने आप में सर्वांगीण होता है, उसी से यह अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनता है। इसमें जीवन के किसी खण्ड की कोई सुनिश्चित कथा तथा उदात्त उद्देश्य निहित रहता है। इसमें प्रायः एक रस की प्रधानता होती है।

'सुदामा-चरित' में खण्डकाव्य की अधिकाँश विशिष्टताओं का सहज सौंदर्य देखा जा सकता है। इसकी कथावस्तु 'श्रीमद्भागवत' के दशम् स्कन्ध से ले गई है। इसमें सुदामा नामक तपोनिष्ठ ब्राह्मण के प्रौढ़ जीवन का वर्णन हुआ है, जिसमें घोर निर्धनता ने अपना साम्राज्य स्थापित कर रखा था। द्वारिकापति श्रीकृष्ण उसके सहपाठी तथा बाल सखा थे। दरिद्र सुदामा उनके पास जाना नहीं चाहता था, उसका स्वाभिमानी ब्राह्मण व्यक्तित्व इसमें सबसे बड़ी दीवार थी। सुदामा-पत्नी के अचूक तर्क-तीरों से वह दीवार अन्ततः टूटती है और श्रीकृष्ण की उदात्त मैत्री से उसका दरिद्रय दूर हो जाता है। उसके जीवन के इस खण्ड या आर्थिक समस्या का वर्णन कवि ने बड़ी कलात्मकता के साथ किया है। उसने सुदामा के जीवन के इस मार्मिक अंग को केन्द्र बनाकर कथा की योजना की है, उसमें न तो किसी प्रासंगिक कथा का समावेश किया है और न उसमें किसी प्रकार की नीरसता आने दी है। उसकी कथावस्तु विकास की विभिन्न अवस्थाओं को पार करती हुई लक्ष्य-सिद्धि को प्राप्त करती है। 'नियताप्ति' की अवस्था, जहाँ पाठक को ज्ञात हो जाता है कि फल प्राप्ति निश्चित है, उसे कवि ने छोड़ दिया है। इससे कथानक में कौतूहल की सृष्टि हुई है और काव्य-सौंदर्य बढ़ा है।

'सुदामा-चरित' का आकार खण्डकाव्योचित है। इसमें कथानायक के समस्त कथावृत्त और जातीय जीवन की विस्तृत व्याख्या को प्रस्तुत नहीं किया गया है। कवि ने निर्धन सुदामा के दारिद्रय से सम्बद्ध तीव्र अनुभूतियों और श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री की उदात्त भावनाओं को ही व्यंजित किया है। इस क्षेत्र में उसकी सफलता असाधारण है। उसने गणेश-वंदना से अपने इस खण्डकाव्य का श्रीगणेश करके, मूलसंवेद्य से सम्बद्ध कथा को तीव्र गति से आगे बढ़ाया है। मंगलाचरण में ही उसने रचना के प्रतिपाद्य-विषय का संकेत दे दिया है—

"श्रीगणेश सुमिरन करों, उपजे बुद्धि प्रकाश।
सो चरित बरनन करों, जासे दारिद नास॥"

सुदामा के दारिद्रय का नाश हो, यही केन्द्रीय भाव है, जिसे सम्पूर्ण कथा-वृत्त में चित्रित किया गया है। सुदामा की निर्धनता को दूर कराने में उसकी पत्नी सुबुद्धि के योगदान भी अत्यन्त महत्त्व था, जिसकी प्रेरणा से वे द्वारिकापुरी गए। फलतः कवि सुबुद्धि के सबल तर्कों तथा बुद्धि-चातुर्य को समुचित महत्त्व देता हुआ, अन्त में श्रीकृष्ण की भव्य तथा स्तुत्य आदर्श-मैत्री को वाणी देता है। इस प्रकार उसने अपने संक्षिप्त, सुगठित तथा प्रवाहमयी कथा के माध्यम से एक निश्चित उद्देश्य को मुखरित किया है। उसने जीवन के जिस अंग को लिया है, उसकी सर्वांगीण व्याख्या की है। उसके वर्णन सजीव तथा मार्मिक हैं। मर्मस्पर्शी स्थलों पर उसकी भावप्रवणता चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो गई है। सुदामा के दारिद्रय का एक कारुणिक चित्र द्रष्टव्य है—

"कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट न चाहति हों दधि दूध मिठौती।
× × ×
या घरतें कबहुँ न गयो पिय, फटो तयौ और टूटी कठौती॥"

सुदामा की दयनीय दशा और श्रीकृष्ण की पावन मैत्री को एक ही छन्द में जिस भावमयता एवं आत्मानुभूति का घना स्पर्श देखकर कवि ने व्यक्त किया है, वह चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो हो गई है—

"ऐसे बेहाल बिबाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोए।
'हाय महादुख पायौ सखा! तुम आए इतै न कितै दिन खोए॥'
देखि सुदामा की दीन दशा, करुणा करके करुणानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयौ नहीं, नैनन के जल सों पग धोए॥"

कविवर नरोत्तमदास ने कथावस्तु को सर्गों में विभाजित नहीं किया है, उसके मूल में भी कथानक में एकात्मक अन्विति को बनाए रखना है। वे अपने संवेद्य को ही अपना सर्वस्व मानकर, उसी की अभिव्यंजना में अपनी सारी शक्ति व्यय करते हैं। उनकी प्रबन्ध-कल्पना, वस्तु एवं भाव-वर्णन मुख्यतः सुदामा की निर्धनता और श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री से सम्बद्ध हैं।

'सुदामा-चरित' में करुण, शाँत, अद्भुत, भक्ति आदि अनेक रसों का परिपाक हुआ है, किन्तु सारे खण्डकाव्य पर मित्र-वत्सलता छाई हुई है, जिसे शास्त्रीय दृष्टि से किसी रस का नाम नहीं दिया जा सकता। ऐसी स्थिति में एक रस की प्रधानता के स्थान पर एक केन्द्रीय भाव के प्राधान्य का रसास्वादन किया जा सकता है। साराँशतः 'सुदामा-चरित' में खण्डकाव्य की प्रायः सभी विशेषताएँ मिलती हैं और इसे हिन्दी-साहित्य का एक सफल खण्डकाव्य कहा जा सकता है।

सुदामा-चरित का कला-सौष्ठव

भाव-पक्ष यदि काव्य की आत्मा है तो कलापक्ष उसका शरीर है। काव्य-पुरुष की आत्मा को सुरक्षित रखने वाले शरीर अर्थात् कलापक्ष के महत्त्व को प्रायः सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। कलापक्ष से सम्बद्ध उपकरणों में मुख्य है---भाषा, वर्णन कुशलता, छन्द-योजना तथा अलंकार-योजना। 'सुदामा-चरित' में व्यंजित भावों की उदात्तता के साथ-साथ कलापक्ष का सौष्ठव भी द्रष्टव्य है—

भाषा—भाषा मुख्यतः ब्रज है, उसमें अवधी, उर्दू, आंचलिक आदि शब्दों का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। इस रचना की ('सुदामा-चरित' की) लोकप्रियता के मूल में उसकी भाषा का वैशिष्ट्य एक प्रधान कारण है। वह सर्वत्र स्वाभाविक, प्रसादगुण-सम्पन्न, देशकालानुरूप, मधुर-प्राँजल, लोकोक्तियों एवं मुहावरों से युक्त, संघात्मक तथा टकसालीपन के सौन्दर्य को लिए हुए है। उसमें लाक्षणिकता, अनुकरणात्मकता, चित्रात्मकता, प्रवाहमयता, व्यंग्यात्मकता आदि गुण भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। वह संवेद्य को अधिकाधिक मर्मस्पर्शी बनाने में अपनी सार्थकता समझती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"नरोत्तमदास की भाषा बहुत ही परिमार्जित और व्यवस्थित है। बहुतेरे कवियों के समान भरती के शब्द और वाक्य इसमें नहीं हैं।"

'सुदामा-चरित' की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा प्रसादगुण-सम्पन्न है। कविवर नरोत्तमदास ने बोलचाल की भाषा को ही साहित्यिक भाषा का सौष्ठव प्रदान कर दिया है। उन्होंने वैसे तो ओज, माधुर्य एवं प्रसाद तीनों गुणों को

विषयानुसार प्रश्रय दिया है किन्तु प्रसादगुण अपनी स्वच्छता एवं द्रवणशीलता में सभी से आगे बढ़ गया है और वह अन्य गुणों को आत्मसात् करता प्रतीत होता है। वे शब्दों का चयन करते समय देशकाल को दृष्टि में रखते हैं। सुदामा के दारिद्रय का वर्णन करने के लिए वे ग्रामीण शब्दावली – 'जुरतो', 'हठौती', 'टूटो तयौ', 'फूटी कठौती' आदि का और द्वारिकापुरी के अपार वैभव का वर्णन करने के लिए सुसंस्कृत भाषा की शब्दावली—'वसुधा', 'अभिराम', 'सुषमा', 'सन्ताप', 'कनक', 'सुरभी', 'घृत', 'दुति' आदि का प्रयोग करते हैं। अपनी भाषा को सहज तथा बोधगम्य बनाने के लिए वे लोक-प्रचलित विदेशी शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। 'अफ़सोस, 'गरीबनबाज' 'सामा', 'लायक' आदि शब्दों का प्रयोग इसी तथ्य की पुष्टि करता है। इसी प्रकार भाषा के सौष्ठव को बढ़ाने वाले अवधी के प्रयोग—'कठौती', 'पंडाइन', 'कोदी सवाँ' आदि भी कम महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं। आँचलिक प्रयोगों में 'छूछी छाम' 'पेलि पठौती', लदाय लढ़ा' आदि का प्रयोग अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन गया है।

'सुदामा-चरित' में प्रयुक्त मुहावरों एवं लोकोक्तियों ने उसकी भाषा की व्यंजना-शक्ति को बढ़ाने में अत्यधिक सहयोग दिया है। इससे वह जन-भाषा के अति निकट पहुँच गई है और संवेद्य अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक बन गया है। कवि ने लोक प्रसिद्ध लोकोक्तियों, सूक्तियों तथा मुहावरों का बड़ी निपुणता के साथ प्रयोग किया है। यथा—'जेंइए जो मित्र के तो आपहु जेंवाइए', 'विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए' आदि लोकोक्तियों या सूक्तियों और 'सुख दुख करि दिन काटे ही बनेंगे', 'भेंटे लपटाय हिय' आदि मुहावरों का जैसा सफल एवं सार्थक प्रयोग 'सुदामा-चरित' में मिलता है, वैसा अन्यत्र सरलता से नहीं मिल सकता है। इस कला में कवि की दक्षता सराहनीय है। वह लोकोक्तियों आदि के प्रयोग से अपनी भाषा को टकसाली बनाने में पर्याप्त सफल रहा है। उससे काव्य-सौष्ठव में निखार आया है और भावों की प्रभाव-शक्ति बढ़ी है—

"कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
या घर ते कबहुं न गयौ पिय टूटो तयौ अरु फूटी कठौती॥"

'सुदामा-चरित' में परिस्थितियों के अनुरूप अनुकरणात्मक, लाक्षणिक तथा

व्यंग्यात्मक प्रयोग देखे जा सकते हैं। अनुकरणात्मक शब्दों में 'जगर-मगर' 'सिसियात', 'मिठौती' आदि का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है। लाक्षणिक प्रयोगों में कवि-कौशल चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो गया है, उससे भावों की मार्मिकता को बल मिला है। वे अत्यन्त प्रभावशाली बन गए हैं—

"पानी परात को हाथ छुयौ नहीं, नैनन के जल सों पग धोये।"

कवि हास्य-व्यंग्य संचार करने के लिए व्यंग्योक्तियों का प्रयोग करने में भी सिद्धहस्त है। सुदामा अपने फटे-पुराने कपड़े में बँधे चावल, श्रीकृष्ण को भेंट करने में अति संकोच अनुभव करता है, जिसे वे भाँप लेते हैं और मीठी चुटकियों एवं व्यंग्योक्तियों के प्रयोग का सुअवसर समझकर कह उठते हैं—

"आगे चना गुरु मातु दए ते तुम खाए हमें नहीं दीने।
स्याम कही मुस्काय सुदामा सों चोरी की बानि में हू जे प्रवीने॥"

श्रीकृष्ण सुदामा का अत्यधिक आदर-सत्कार करते हैं, किन्तु जाते समय उसे प्रत्यक्ष रूप में कुछ नहीं देते हैं। इसकी सुदामा पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई, उसी को वह व्यंग्यात्मक रूप में व्यंजित करता हुआ कहता है —

"हौं आवत नाहीं हुतौ, वाहि पठयो ठेलि।
कहिहौं धन सौं जाइके, अब धन धरौ सकेलि॥"

'सुदामा-चरित' की भाषा में संगीतात्मकता, चित्रात्मकता, प्रवाहमयता आदि का वैशिष्ट्य भी यत्र-तत्र देखा जा सकता है। इस दिशा में उसका शब्द-चयन सर्वाधिक सहायक रहा है। कवि मधुर-प्राँजल शब्दों; बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ शब्दावली का प्रयोग करने में बड़ी निपुणता दिखाता है। उससे भाषा वेगमयी, बिम्बात्मक तथा हृदयस्पर्शी बन गई है।

वर्णन-कौशल—'सुदामा-चरित' का रचयिता वस्तु एवं भाव दोनों के वर्णन में असाधारण सफलता प्राप्त करता है। उसका वर्णन कौशल सुदामा के द्रारिद्रय चित्रण, श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री के प्रतिष्ठापन और सुदामा के अन्तर्द्वन्द्व को व्यंजित करने में जिस निपुणता का परिचय देता है, वह निःसन्देह सराहनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन 'सुदामा-चरित' पर पूर्णतः चारितार्थ होता है—"कवि की भावुकता कथा प्रसंगों के मार्मिक स्थलों की पहचान में

निहित है। वही भावुक कहा जा सकता है जो मार्मिक स्थलों को शब्द चित्रों द्वारा अंकित कर सजीव दृश्य उपस्थित कर दे, जिसे पढ़कर पाठक आत्म-विभोर हो जायँ और उसी भाव में डूबने-उतरने लगें।" कविवर नरोतमदास ने मार्मिक स्थलों की पहचान और उन्हें शब्द-चित्रों द्वारा सजीव दृश्यों में उपस्थित करने में अपनी गहन अनुभूति तथा भाव प्रवणता को व्यक्त किया है। उसी से इन मार्मिक स्थलों को पढ़ते समय पाठक आत्म-विभोर हो जाते हैं और उन्हीं भावों में डूबने-उतरने लगते हैं। सुदामा की निर्धनता का वे इतना कारुणिक हृदय-विदारक तथा यथार्थ दृश्य प्रस्तुत करते हैं कि पाठकों का हृदय द्रवित हो उठता है --

"कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत बितीत भयौ सिसियातहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि-सौं, तो काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर ते कबहूं न गयौ पिय, टूटो तयो अरु फूटी कठौती॥"

'सुदामा-चरित' का दूसरा प्रमुख मार्मिक स्थल श्रीकृष्ण और सुदामा का मार्मिक मिलन है। सुदामा की दयनीय दशा पाठकों के हृदय को जहाँ अत्यधिक द्रवित करती है वहाँ श्रीकृष्ण की उदात्त मैत्री-भावना का दृश्य पाठकों को अलौकिक आनन्द से आत्मविभोर कर देता है—

"ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायौ सखा, तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुणा करिकै करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुऔ नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥"

कविवर नरोत्तमदास जिस तीसरे मार्मिक स्थल का चयन करते हैं, वह है सुदामा की उस मनः स्थिति का वर्णन जिसमें वह कभी अपनी पत्नी पर और कभी अपने मित्र श्रीकृष्ण की कृपणता पर झुँझलाते हैं—

"घर-घर ओढ़त फिरे तनक दही के काज,
कहा भयौ जो अब भयौ, हरि को राज समाज।

हौं आवत नाहीं हुतौ, वाही पठियौ ठलि,
कहि हौं धन सों जाइके, अब धन धरौ सकेलि ॥''

भाव-वर्णन में ही नहीं, वस्तु-वर्णन में भी कवि कई मर्मस्पर्शी शब्द-चित्र अंकित करता है। वे शब्द-चित्र मुख्यतः द्वारिकापुरी के वैभव और उसके बाद सुदामापुरी के वैभव से सम्बद्ध हैं। श्रीकृष्ण जो अपार वैभव सुदामा को देते हैं, उसे देखकर राजा इन्द्र भी लजा जाते हैं। उसी का एक शब्द-चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है—

कै वह टूटी सी छानी हुती, कहाँ कंचन के सब धाम सुहावत,
कै पग में पनही न हुती, कहाँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत।
भूमि कठोर पै रैन कटै, कहाँ कोमल सेज पै नींद न आवत,
कै जुरतौ नहिं कोदों सवाँ, प्रभु के प्रताप ते दाख न भावत ॥''

'सुदामा-चरित' का वर्णन कौशल मुख्यतः **दो शैलियों** में मुखरित हुआ है — वर्णनात्मक शैली और नाटकीय शैली। कथा-प्रसंगों को गतिशीलता प्रदान करने के लिए वर्णनात्मक शैली को और भावपूर्ण मार्मिक स्थलों के लिए नाटकीय शैली को अपनाना कवि अधिक उपयुक्त समझता है। भावपूर्ण स्थलों के चित्रण में कवि का मन विशेष रूप से रमा है और ऐसे स्थल भाव-सम्पदा के अनूठे उदाहरण बन गए हैं। इन स्थलों के कलात्मक सौष्ठव का श्रेय उसकी नाटकीय शैली को दिया जा सकता है। इस शैली के प्रयोग से इस रचना में कौतूहल, रोचकता, प्रभावोत्पादकता तथा मार्मिकता का संचार हुआ है।

छन्द-योजना—'सुदामा-चरित' में मुख्यतः दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दों की योजना हुई है। ये छन्द विषय एवं प्रसंग के अनुरूप अपने स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इन छन्दों में दोहा छन्द का प्रयोग कवि ने वर्णनात्मक प्रसगों में कथा-विकास को दृष्टि में रखकर किया है। वह कथावस्तु के विविध मोड़ों और आग-पीछे के प्रसंगों को परस्पर जोड़ने के निमित्त इस छन्द के प्रयोग को सर्वाधिक उपयोगी समझता है। कथावृत्त का प्रारम्भ, द्वारिकापुरी में प्रवेश, वहाँ से प्रस्थान और सुदामापुरी में प्रवेश के विभिन्न अवसरों पर यह छन्द विशेषतः प्रयुक्त हुआ है। इस छन्द का सौष्ठव सांकेतिक अभिव्यंजना और

कथावस्तु को लघु आकार प्रदान करने में देखा जा सकता है। भावपूर्ण मार्मिक स्थलों की अभिव्यक्ति के निमित्त कवि कवित्त एवं सवैया नामक छन्दों का अधिक प्रयोग करता है। भाव-व्यंजना को उपयुक्त विस्तार देने के लिए इन छन्दों का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक समीचीन था। इस रचना के नाटकीय सौष्ठव लाने के लिए सवैवा छन्द और परिस्थिति-चित्रण के लिए कवित्त छन्द का प्रयोग भी बहुत उपयुक्त रहा है। वस्तुतः विषय एवं प्रसंग के अनुकूल छन्दों का चयन एवं प्रयोग कवि की सूझ-बूझ का परिचायक है। वह छन्द-शास्त्र से न केवल परिचित है वरन् उसके उपयुक्त उपयोग का भी पारखी है।

'सुदामा-चरित' की छन्द-योजना की कतिपय निजी विशेषताएँ भी उसके महत्त्व को बढ़ाती हैं। कवि ने लय, तुक, यति, गति आदि का प्रयोग कुछ इस प्रकार से किया है कि उसके कवित्व में एक विशिष्ट संगीत, प्रवाह, भावमयता तथा सरसता आ गई है। कवि का छन्द-गठन पर पूर्ण अधिकार है, वह तुक-पूर्ति के लिए न तो शब्दों की अधिक तोड़-मरोड़ करता है और न अनावश्यक शब्दों की भरती करता है। 'सामा', 'मिठौती', 'हठौती' आदि प्रयुक्त तुकें ब्रज-भाषा व्याकरण के अति निकट हैं और छन्द-गठन में उनकी उपयोगिता निर्विवाद है। फलतः इस रचना के छन्दों में पाठकों को भाव-विभोर कर लेने की पर्याप्त क्षमता है। वे अपने संगीत एवं मर्मस्पर्शी भाव-व्यंजना के नाते बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। पाठक उन्हें बार-बार पढ़ने, कंठस्थ करने तथा उनका रसास्वादन करने में मग्न हो जाता है। सवैया छन्द का एक उत्कृष्ट उदाहरण द्रष्टव्य है —

"सीस पगा न झगा तन में प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पायं उपानहु को नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यौ चकि सौं वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनौ नाम सुदामा॥"

अलंकार-योजना—'सुदामा-चरित' की अलंकार-योजना पूर्णतः स्वाभाविक एवं भावानुकूल है। कवि ने कहीं भी सायास अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है; उनका विधान आप-से-आप हो गया है। भाव, लय तथा कथा-प्रसंग के

अनुसार कवि ने अनुप्रास, यमक, स्वभावोक्ति, परिकरांकुर, उदात्त, सार, सन्देह, रूपक आदि अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। लय और गेयता को दृष्टि में रखकर उसने अनुप्रास जैसे अलंकारों को विशेष महत्त्व दिया है। कथा-प्रसंगों तथा परिस्थितियों की प्रभावोत्पादक व्यंजना में परिकुरांकुर अलंकार का मुख्य रूप से सहयोग लिया गया है। इस रचना में दस से भी अधिक बार यह अलंकार प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार यमक, उदात्त, सन्देह आदि अलंकारों का सहज प्रयोग भी भावों की अभिव्यंजना में अत्यधिक सहायक रहा है। ये अलंकार कविता-कामिनी के लिए श्रृंगार ही बने हैं, भार नहीं। इनके प्रयोग से काव्य में कहीं भी जटिलता या नीरसता का संचार नहीं हुआ है। सच तो यह है कि 'सुदामा-चरित' स्फूर्त्त काव्य, है इसमें कहीं भी प्रयत्न पूर्वक अलंकारों को भरने या लादने का यत्न नहीं किया गया है। कवि ने केवल उन अलंकारों ही का स्वागत किया है जो उसके रचना प्रवाह में आप-से-आप आकर घुल-मिल गए हैं। कतिपय प्रमुख अलंकारों का सौष्ठव द्रष्टव्य है—

१. **यमक**—"हौं आवत नाहीं हुतौ, वाही पठयो ठेलि।
कहिहौं धन सौं जाइकै, अब धन धरो सकेलि॥"

२. **परिकर**—"दीनदयाल को ऐसेई द्वार है
दीनन की सुधि लेत सदाई।"

३. **सन्देह**—"कहँ वह टूटी सी छानी हुती,
कहँ कंचन के सब धाम सुहावत।"

४. **रूपक**— "लोचन कमल दुख मोचन कमल भाल।"

५. **स्वभावोक्ति**—"टूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर
तामें परी दुःख काटै, कहाँ हेम-धाम री।"

६. **उपमा**—"देवता से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं।"

सुदामा-चरित में रस-व्यंजना

काव्य-शास्त्र की दृष्टि से हम 'सुदामा-चरित' में करुण, शांत, अद्भुत, भक्ति आदि विविध रसों की व्यंजना खोज सकते हैं और इनमें भक्ति रस को इसका

अंगी रस मान सकते हैं। किन्तु इस रचना का निर्माता आदर्श-मैत्री के उदात्त भाव को सर्वोच्च प्राथमिकता देता प्रतीत होता है। यही मित्र वत्सलता का उदात्त भाव इस खण्ड-काव्य का केन्द्रीय भाव है, जिसकी प्रतिष्ठा ही कवि का अभीष्ट है।

'सुदामा-चरित' के प्रारम्भ में कवि सुदामा की दीन-हीन दशा का मर्म-स्पर्शी निरूपण करके पाठकों के हृदय में स्थित करुणभाव को जागृत करता है। सुदामा का दाम्पत्य जीवन करुण रस से परिप्लावित है। पाठक उससे पूर्णतः सहानुभूति रखते हैं। श्रीकृष्ण भी उसकी दयनीय दशा देखकर द्रवित हो जाते हैं—

"देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोए॥"

सुदामा की वैराग्य-भावना, प्रभु-भक्ति, सांसारिक वैभव के प्रति उदासीनता आदि के निरूपण में शांत रस की व्यंजना दृष्टिगत होती है। सुदामा का सन्तोष एवं निष्काम भक्ति-भाव पाठकों के निर्वेद स्थायी भाव को जागृत करता है। पाठक शांत-रस का रसास्वादन करने लगते हैं। किन्तु अद्‌भुत और भक्ति-रस की व्यंजना अपेक्षाकृत अधिक होने से पाठक उन्हीं की ओर आकृष्ट होते प्रतीत होते हैं। ये रस परस्पर विरोधी नहीं कहे जा सकते हैं। अद्‌भुत-रस का स्थायी भाव विस्मय है और भक्ति-रस का भक्ति। दोनों में चमत्कार या विस्मय का भाव निश्चित रूप से निहित रहता है। "सुदामा-चरित्र' में एक ओर भाग्य का और दूसरी ओर भक्ति का चमत्कार व्यंजित हुआ है। सुदामा की अपार निर्धनता और ऐश्वर्य की कहानी मुख्यतः भाग्य के रज्जू से बंधी हुई है। भाग्य के चमत्कार से ही टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहने वाला दरिद्र सुदामा, सोने के भवन में रहने लगता है। कवि इस विस्मयकारी परिवर्तन का निरूपण करता हुआ कहता है—

"कै वह टूटी सी छानी हुती, कहं कंचन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनही न हुती, कहं गजराजहु ठाढ़े महावत।

भूमि कठोर पै रात कटै, कहं कोमल सेज पै नींद न आवत ।
कै जुरतो नहिं कोदों सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत ।।"

'सुदामा-चरित' में कवि वितर्क, भ्रम, भय आदि संचारी भावों की व्यवस्था करके निश्चय ही अद्भुत-रस की सफल व्यंजना करता है किन्तु यह अद्भुत-रस भक्ति-रस पर अवलम्बित है और अन्त में उसी का अंग बन जाता है। सुदामा को घोर दारिद्रय से छुटकारा दिलाने तथा अपार धन-वैभव को प्राप्त कराने का श्रेय श्रीकृष्ण की भक्त वत्सलता को ही देना समीचीन है। श्रीकृष्ण करुणानिधान दीनदयाल, भक्त-वत्सल अन्तर्यामी तथा पतित-पावन हैं। दुखियों के दुख को दूर करके उन्हें सुख-शान्ति प्रदान करना ही उनका मुख्य कार्य है। उन्हीं की कृपा से सुदामा का भी उद्धार होता है। फलतः विस्मय-रस का रसास्वादन करते-करते पाठक भक्ति-रस में आत्म-विभोर हो जाता है और उसी को इस रचना का अंगीरस माना जा सकता है।

'सुदामा-चरित' की भक्ति-भावना परम्परा से कुछ पृथक् दृष्टिगत होती है। कवि श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप की अपेक्षा मित्रवत्सलता के रूप को अधिक प्रश्रय देता है। श्रीकृष्ण सुदामा का उद्धार अपने भक्त के नाते नहीं वरन् बाल-सखा के रूप में करते हैं। वे मैत्री के उच्च आदर्श को स्थापित करने के लिए अपना सर्वस्व उसे सौंप देना चाहते हैं। उनकी इस आदर्श-मैत्री का निरूपण ही कवि का प्रमुख अभीष्ट लगता है। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से मित्रवत्सलता के भाव को चाहे किसी रूप में परिणत न किया जा सके किन्तु 'सुदाम-चरित' में वह पूर्णतः व्याप्त है।

कृष्ण-काव्य-परम्परा और सुदामा-चरित

कृष्ण-भक्ति-काव्य में श्रीकृष्ण के लोकरंजन रूप को ही अधिक प्रश्रय दिया गया है। उनके लोक रक्षक रूप को बहुत थोड़े कवियों ने प्रस्तुत किया है। मध्यकालीन कवियों ने उनके बाल-रूप तथा तरुण रूप की मनमोहक लीलाओं को अपने ही काव्य का विषय बनाया। उनके महिमामय विराट व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं को प्रायः छोड़ दिया या उसका सांकेतिक वर्णन कर देना ही पर्याप्त

समझा। 'महाभारत' एवं 'श्रीमद्‌भागवत' में उनके महान् व्यक्तित्व की जो असंख्य मणियाँ विकीर्ण मिलती हैं, उन्हें भली प्रकार से संजोने का कार्य अभी शेष है। इस गुरुतर कार्य के एक अंश को पूरा करने का स्तुत्य प्रयास हम 'सुदामा-चरित' में देखते हैं। कविवर नरोत्तमदास ने श्रीकृष्ण के उदात्त मैत्री-आदर्श को अपनी इस रचना में प्रतिष्ठित किया है।

निस्सन्देह 'सुदामा-चरित' की पूर्ववर्त्ती एवं परवर्त्ती काव्य-रचनाओं में सुदामा के दारिद्रय-भंजन की कथा को लेकर अनेक कवियों ने लेखनी उठाई। किन्तु इस दिशा में जो सफलता कविवर नरोत्तमदास को मिली वह अन्य किसी कवि को नहीं। सुदामा के दारिद्रय-वर्णन और श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री का मर्मस्पर्शी वर्णन करने में 'सुदामा-चरित' के निर्माता अपूर्व सफलता गौरवमयी है। उसी से यह काव्य युग-युगों तक पाठकों के हृदय-तल को स्पर्श करता रहेगा। और श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री का सन्देश देता रहेगा।

कविवर नरोत्तमदास से पूर्व महाकवि सूरदास ने निर्धन सुदामा की कथा को अपने 'सूरसागर' के बीस पदों में चित्रित किया है, किन्तु इस भावपूर्ण प्रसंग को वे अधिक मार्मिकता प्रदान नहीं कर सके हैं। श्रीकृष्ण के उदात्त मैत्री-आदर्श को प्रतिष्ठित करना उनका अभीष्ट भी प्रतीत नहीं होता है। अष्टछाप के दूसरे प्रसिद्ध कवि नन्ददास ने भी 'सुदामा-चरित' का सृजन किया था, किन्तु वह अनुपलब्ध है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह उनकी 'सम्पूर्ण भाषा भागवत' नामक अप्राप्य रचना का अंश है। नरोत्तमदास कृत 'सुदामा-चरित' अपने पूर्व-वर्त्ती सुदामा विषयक काव्य-ग्रन्थों से निर्विवाद रूप से श्रेष्ठ रचना है।

नरोत्तमदास के परवर्त्ती अनेक कवियों ने भी इस क्षेत्र में कार्य किया, यथा—सं० १६८३ के आसपास आलम कवि ने 'सुदामा-चरित' की रचना रेखता में की। यह केवल ६० पद्यों का लघु काव्य है। सं० १७३१ में के लग-भग कवि कालीराम ने 'सुदामा-चरित' का सृजन ब्रजभाषा में किया। अठा-रहवीं शताब्दी में जिन कवियों ने सुदामा-चरित से सम्बद्ध काव्य-रचनाओं का सृजन किया, उनमें माखन, खण्डन, वीर आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में इस परम्परा को विकास प्रदान करने वाले प्रमुख कवि

हैं—गोपाल, प्राणनाथ, बालकदास फकीर आदि। बीसवीं शताब्दी में सुदामा विषयक रचनाओं का प्रणयन करने वाले कवियों में हलधर, महाराजदास तथा भूधर के नाम प्रसिद्ध हैं। इस परम्परा को हिन्दी-कवियों ने ही नहीं वरन् पंजाबी के कवियों ने भी प्रोत्साहन दिया; जिनमें साहिबदास, हृदयराम, रामदास मिश्र आदि कवियों का नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु सुदामा विषययक काव्य-कृतियों की इस दीर्घ परम्परा में नरोत्तमदास का 'सुदामा-चरित' आज भी बेजोड़ काव्य-रचना है। इसकी भाव-व्यंजना एवं कलासौष्ठव अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इसमें प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण की आदर्शमैत्री, कृष्ण-काव्य में तो क्या सारे हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उदात्त मैत्री-भावना के ऐसे भाव्य दृष्टान्त, विश्व-साहित्य में इने-गिने ही मिलेंगे। वस्तुतः कविवर नरोत्तमदास विरचित 'सुदामा-चरित' एक अमर काव्य-रचना है।

□□□

सुदामा-चरित

(मूल पाठ)

(दोहा)

श्रीगनेस सुमिर करौं, उपजै बुद्धि प्रकास ।
सो चरित्र बरनन करौ, जातें दारिद नास ॥१॥
ज्यों गंगा-जल-पान तें, पावत पद निरवान ।
त्यों सिंधुर-मुख-बात तें, मूढ़ होत बुधिवान ॥२॥
कृस्न-मित्र कइ जन्म को, ताको बरनन कीन्ह ।
सुख संपति माया मिलै, सो उपदेश जु दीन्ह ॥३॥
विप्र सुदामा बसत हो, सदा आपने धाम ।
भीख माँगि भोजन करैं, हिये जपत हरि-नाम ॥४॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहे वेद की रीति ।
सलज सुसील सुबुद्धि अति, पति-सेवा सौं प्रीति ॥५॥
कह्यौ सुदामा एक दिन, 'कृस्न हमारे मित्र' ।
करत रहति उपदेश तिय, ऐसो परम-बिचित्र ॥६॥

स्त्री

महादानि जिनके हितू, जदु-कुल-कैरव-चंद ।
ते दारिद-संताप तें, रहैं न किमि निरद्वंद ॥७॥
कह्यौ सुदामा 'बाम ! सुने, बृथा और सब भोग ।
सत्यभजन भगवान को, धर्म-सहित जप-जोग' ॥८॥

स्त्री

(कवित्त)

लोचन-कमल दुख-मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुंडल मुकुट धरे माथ हैं
ओढ़े पीत-बसन गरे मैं वैजयन्ती-माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं ।।
कहत नरोत्तम संदीपनि गुरू के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं ।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरैंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वै अनाथन के नाथ हैं ।।९।।

(सवैया)

सुदामा

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय, ताको कहा, अव देति है सिच्छा ।
जे तप कै परलोक सुधारत, संपति की तिन नहिं इच्छा ।।
मेरे हिते हरि के पद-पंकज, बार हजार लै देखु परिच्छा ।
औरन को धन चाहिय बावरि, बाँभन को धन केवल भिच्छा ।।१०।।

स्त्री

दानी बड़े तिहुँ लोकन में, जग जीवत नाम सदा जिनको लै ।
दीनन की सुधि लेत भली विधि, सिद्धि करौ पिय मेरो मतो लै ।।
दीनदयाल के द्वार न जात सो, और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै ।
श्रीजदुनाथ-से जाके हितू, सो तिहूं पन क्यों कन माँगत डोलै ।।११।।

सुदामा

छत्रिन के प्रन जुद्ध, जुवा, सजि बाजि, चढ़ैं गजराजन ही ।
बैस को बानिज और कृषि, प्रन सूद्र को सेवन-साजन ही ।।

बिप्रन को प्रन है जु यही सुख संपति सों कछु काज नहीं।
कै पढ़िबो, कै तपोधन है, कन माँगत बाँभनै लाज नहीं ॥१२॥

स्त्री

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती ॥
सीत बितीत गयौ सिसियातहिं, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती ।
जौ जनती न हितू हरि सों तुम्हें काहे का द्वारिका पेलि पठौती ।
या घर तें न गयो कबहूँ पिय ! टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥१३॥

सुदामा

छाँड़ि सबै जक तोहि लगी बक, आठहुँ जाम यहै जक ठानी ।
जातहिं दैहैं लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यहै जिय जानी ।।
पावैं कहाँ तें अटारी अटा, जिनके विधि दीन्हीं है टूटी-सी छानी ।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तौ, काहू-पै मेटि न जात अजानी ॥१४॥

स्त्री

पूरन पैज करी प्रह्लाद की, खंभ सों बाँध्यो पिता जिहि बेरे ।
द्रौपदी ध्यान धर्‌यौ जबहीं, तबहीं पट-कोट लगे लगे चहुँ फेरे ।
ग्राह तैं छूटि गयंद गयौ पिय ! है हरि को निहचै जिय मेरे ।
ऐसे दरिद्र हजार हरैं वै, कृपानिधि लोचन-कोर के हेरे ॥१५॥

सुदामा

चक्कवै चौंकि रहे चकि-से, तहाँ भूले-से भूप कितेक गनाऊँ ।
देव गंधर्ब और किन्नर जच्छ-से, साँझ लौं देखे खरे जिहि ठाऊँ।।
तैं दरबार बिलोक्यौ नहीं अब तोहि कहा कहिकै समुझाऊँ ।
रोकिए लोकन के मुखिया, तहँ हौं दुखिया किमि पैठन पाऊँ ॥१६॥

स्त्री

भूले से भूप अनेक खरे रहौ ठाढ़े रहौ तिमि चक्कवै भारी ।
देव गंधर्व और किन्नर जच्छ-से रोके जे लोकन के अधिकारी ॥

अंतरजामी वे आपुहि जानिहैं, मानौ यहै सिख लेहु हमारी ।
द्वारिकानाथ के द्वार गए सबतें पहिले सुधि लैहैं तुम्हारी ॥१७॥

सुदामा

दीनदयाल को ऐसोई द्वार है, दीनन की सुधि लेति सदाई ।
द्रौपदी तें, गज तें, प्रह्लाद तें, जानि परा न बिलंब लगाई ॥
याहि तें भावत मो-मन दीनता, जौ निबहैं निबही जस आई ।
जौ ब्रजराज सों प्रीति नहीं, केहि काज सुरेसहु की ठकुराई ॥१८॥

(कवित्त)

स्त्री

फाटे पट टूटी छानि खायौ भीख माँगि आनि,
बिना जग्य बिमुख रहत देव-पित्रई ।
वै हैं दीनबन्धु दुखी देखिकै दयालु ह्वै हैं,
दैहैं कछु भलो, सो हौं जानत अगत्रई ॥
द्वारिका लौं जात पिय ! केतौ अलसात तुम,
काहे कौ लजात, भई कौन-सी विचित्रई ।
जौ पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायौ तौ पे,
कौन काज आइहैं कृपानिधि की मित्रई ॥१९॥

सुदामा

तैं तो कही नीकी सुनि बात हित-ही की,
यही रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए ।
मित्र के तें चित्त चाहिए परस्पर,
मित्र के जो जेंइए तो आपहू जेंवाइए ॥
वै हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यदि रूप जाइ कहा सकुचाइए ।

सुख दुख करि दिन काटे ही बनैंगे, भूलि
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए ॥२०॥

स्त्री

बिप्र के भगत हरि जगत-बिदित-बंधु,
लेते सब ही की सुधि ऐसे महादानि हैं।
पढ़े एक चटसार कही तुम कैयों बार,
लोचन अपार वै तुम्हें न पहिचानिहैं ?
एक दीनबन्धु, कृपासिन्धु फेरि गुरुबन्धु,
तुम-सम कौन दीन जाकौ जिय जानिहैं ?
नाम लेत चौगुनी, गए तें द्वार सौगुनी सो,
देखत सहस्र गुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ॥२१॥

(सवैया)

सुदामा

प्रीति मैं चूक न है उनके, हरि मों मिलिहैं उठि कंठ लगायकै।
द्वार गये कछु दैहैं पै दैहैं वे, द्वारिकानाथजू हैं सब लायकै॥
या विधि बीति गई पन द्वै, अब तौ पहुँच्यौ बिरधापन आयकै।
जीवन केतौ है जाके लिए, हरि सों अब होहुँ कनावड़ौ जायकै ॥२२॥

स्त्री

हूजे कनावड़ौ बार हजार-लौं, जौ हितू दीनदयाल-सों पाइए।
तीनहुँ लोक के ठाकुर है, तिनके दरबार न जात लजाइए॥
मेरी कही जिय में धरिके पिय, भूलि न और प्रसंग चलाइए।
और के द्वार सा द्वार कहा पिय! द्वारिकानाथ के द्वार सिधाइए ॥२३॥

(सवैया)

सुदामा

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू, आठहु जाम यहै जक तेरे ।
जौ न कहौ करिए तो बड़ो दुख, जैए कहाँ अपनी गति हेरे ॥
द्वार खरे प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे ।
पाँच सुपारी, तैं देख बिचारिकै भेंट को चारि न चाउर मेरे ॥२४॥

(दोहा)

यह सुनिकै तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि-पास ।
पाव-सेर चाउर लिए, आई सहित-हुलास ॥२५॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाँधि दुपटिया-खूँट ।
माँगत खात चलै तहाँ, मारग बाली-बूट ॥२६॥
तीन दिवस चलि बिप्र के, दूखि उठे जब पाँय ।
एक ठौर सोए कहूँ, घास-पयार बिछाय ॥२७॥
अंतरजामी आपु हरि, जानि भगत की पीर ।
सोवत लै ठाढ़ो कियो, नदी गोमती-तीर ॥२८॥
प्रात गोमती-दरस तें, अति प्रसन्न भो चित्त ।
बिप्र तहाँ असनान करि, कीन्हों नित्त-निमित्त ॥२९॥
भाल तिलक घसिकै दियौ, गही सुमिरिनी हाथ ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयौ अनाथ सनाथ ॥३०॥

(कवित्त)

दीठि चकचौंधि गई देखत सुबर्नमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं ।
पूछे बिन कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात,
देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं ॥
देखत सुदामैं धाय पौरजन गहे पाय,
"कृपा करि कहौ बिप्र कहाँ कीन्ह गौन हैं ?"

"धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहाँ कौन हैं?" ॥३१॥

(दोहा)

दीन जानि काहू पुरुष कर गहि लीन्हौं आय।
दीनहिं द्वार खरो कियौ, दीनद्याल के जाय ॥३२॥
द्वारपाल द्विज जानिकै, कीन्हौं दंड-प्रनाम।
"बिप्र! कृपा करि भाषिए, सकुल आपनो नाम" ॥३३॥

सुदामा

नाम सुदामा कृस्न हम, पढ़े एकई साथ।
कुल पाँड़े ब्रजराज सुनि सकल जानिहैं गाथ॥ ३४ ॥
द्वारपाल चलि तहँ गयौ, ज़हाँ कृस्न जदुराय।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयौ, बोल्यौ सीस नवाय ॥३५॥

(सवैया)

द्वारपाल

सीस पगा न झगा तन पै, प्रभू! जानै को आहि! बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी, अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सों बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥३६॥

(कवित्त)

बोल्यौ द्वारपालक 'सुदामा नाम पाँड़े', सुनि
छाँड़ राज-काज ऐसे जी की गति जानै को?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय;
भेंटे लपटाय करि ऐसे दुख-सानै को?
नैन दोऊ जल भरि पूंछत कुसल हरि,
बिप्र बोल्यौ 'बिपदा मैं मोहि पहिचानै को?

जैसी तुम करी तैसी करै को कृपा के सिंधु !
ऐसी प्रीति दीनवंधु ! दीनन सों मानै को ?' ॥३७॥

(सवैया)

लोचन पूरि रहे जल सों, प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यौ ।
सोच भयो सुरनायक के,कलपद्रुम के हिय मांझ खखेट्यौ ॥
कंप कुबेर-हिये सरसो, परसो पग जात सुमेरु समेट्यौ ।
रंक तें राउ भयौ तबहीं, भरि अंक रमापति भेंट्यौ ॥३८॥

(दोहा)

भेंटि भली बिधि बिप्र सों, कर गहि त्रिभुवनराय ।
अंतःपुर को लै गये, यहाँ न दूजौ जाय ॥३९॥
मनिमंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय ।
पानी धर्‌यौ परात मैं, पग धोवन कौं लाय ॥४०॥
राज-रमनि सोरह-सहस, सह-सेवकन स-मीत ।
आठो पटरानी भई, चकित चितैं यह प्रीति ॥४१॥
जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत-संताप ।
पाँय सुदामा बिप्र के, धोवत ते हरि आप ॥४२॥

(सवैया)

ऐसे बेहाल बेवाइन सों, पग कंटक-जाल लगे पुनि जोए ।
'हाय ? महादुख पायौ सखा, तुम आए इतैं न कितै दिन खोए ।'
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोए ॥
पानि परात को हाथ छुयौ नहिं, नैनन के जल सों पग धोए ॥४३॥

(दोहा)

धोय पाँय पट-पीत सों, पोंछत हैं जदुराय ।
सतिभामा सों यौं कहा, 'करौ रसोई जाय' ॥

तंदुल तिय दीन्हें हते, आगे धरियौ जाय।
देखि राज-संपति विभव, दै नहिं सकत लजाय ॥४५॥
अंतरजामी आप हरि, जानि भगत की रीति।
सुहृद सुदामा विप्र सों, प्रगत जनाई प्रीति ॥४६॥

श्रीकृष्ण

कुछ भाभी हमको दियौ, सो तुम काहे न देत।
चाँपि पोटरी काँख मैं, रहे कहौ केहि हेत ॥४७॥

(सवैया)

आगे चना गुरु-मात दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यौ मुसुकाय सुदामा सों, 'चोरी की बानि मैं हौ जू प्रबीने॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम, खोलत नाहिं सुधा-रस-भीने।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम, तैसेई भाभी के तंदुल कीने ॥४८॥

(दोहा)

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखरि गये तेहि ठौर ॥४९॥
एक मुठी हरि भरि लई, लीन्हीं मुख मैं डारि।
चबत चबाउ करन लगे, चतुरानन त्रिपुरारि ॥५०॥

(सवैया)

काँपि उठी कमला मन सोचत, 'मो सों कहा हरि को मन औंको ?
रिद्धि कँपी सब सिद्धि कँपीं, नव सिद्धि कँपीं 'बम्हना यह धौं को ?
सोच भयौ सुरनायक को जब, दूसरि बार लियौ भरि झौंको।
मेरु डर्‌यो 'बकसैं जनि मोहिं' कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥५१॥

(कवित्त)

हूल हियरा में, सब-कानन परी है टेर,
'भेंटत सुदामैं स्याम चाबि न अघात ही।'

कहै नरोत्तम; रिद्धि सिद्धिन मैं सोर भयौ,
ठाढ़ी थरहरैं ओर सोचै कमला तहीं ॥
नाक लोक, नाग लोक, ओक-ओक थोत-थोक,
ठाढ़े थरहरैं मुख सूखे सब गातहीं।
हालो परो थोकन मैं, लालो परो लोकन मैं,
चालो परो चक्रन मैं चाउर चबातही ! ॥५२॥

(सवैया)

भौन भरो पकवान मिठाइन, लोग कहैं निधि हैं सुषमा के।
साँझ सबेरे पिता अभिलाषत, दाख न चाखत सिंधु छमा के।
बाँभन एक कोउ दुखिया सेर पावक चाउर लायौ समा के॥
प्रीति की रीति कहा कहिए, तेहि बैठि चबात हैं कंत रमा के॥५३॥

(दोहा)

मुठी तीसरी भरत ही, रुकुमिनि पकरी बाँह।
'ऐसो तुम्हैं कहा भई, संपति की अनचाह' ॥५४॥
कही रुकुमिनी कान में, 'यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामा आप सों, होत सुदामा आप' ॥५५॥

(दोहा)

यह कौतुक लखिकै सभय, कही सेवकिनि आय।
भई रसोई सिद्ध प्रभु ! 'भोजन करिए जाय' ॥५६॥
विप्र-सहित असनान करि, धोती पहिरि बनाय।
संध्या करि मध्याह्न की, चौका बैठे जाय ॥५७॥

(कवित्त)

रूपे के रुचिकर-थार पायक सहित सिता—
जीती जिन सोभा है सरदहू के चन्द की।

दूसरे पहिति भात सोंधो सुरभी को घृत,
फूले-फूले फुलका प्रफुल्ल दुति मंद की ॥
पापर मुँगौरी बरा व्यंजन अनेक प्रीति—
देवता बिलोकि रहे देवकि के नन्द की ।
या बिधि सुदामाजू कों आछे कै जेंवाय प्रभु,
पाछे तें पछ्यावरि परोसी आनि कंद की ॥५८॥

(दोहा)

सात दिवस यहि विधि रहे, दिन-दिन आदर-भाव ।
चित चल्यौ घर चलन कौं, ताकर सुनौ बनाव ॥५९॥

(सवैया)

दाहिने बेद पढ़ै चतुरानन, सामुहे ध्यान महेस धर्‌यौ है ।
बाएँ दुऔ कर जोरि लिए, सब देवन साथ सुरेस खर्‌यौ है ॥
एतेइ बीच अनेक लिए धन, पायन आय कुबेर पर्‌यौ है ।
देखि बिभौ अपनो सपनो, बपुरो वह बाँभन चौंकि पर्‌यौ है ॥६०॥

(दोहा)

देनो हुतौ सो दै चुके, बिप्र न जानी गाथ ।
चलती बेर गोपालजू, कछू न दीन्हों हाथ ॥६१॥

सुदामा

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति ।
यह पठवनि गोपाल की, कछू न जानी जाति ॥६२॥
घर-घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज ।
कहा भयो जौ अब भयौ, हरि को राज-समाज ॥६३॥
हौं आवत नाहीं हुतौ, वाही पठ्यौ ठेलि ।
कहिहौं धन सों जाइकै, अब धन धरौ सकेलि ॥६४॥

बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं साप।
जैसो हरि हमको दिया, तैसो पइहैं आप ॥६५॥
नौ गुनधारि छगुन सों, तिगुना-मध्ये जाय।
लायौं चापल चौगुनी, आठौ गुननि गँवाय ॥६६॥
और कहा कहिए जहाँ, कंचन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो, मोको दियो न दाम ॥६७॥
बहु-भंडार रतन-भरे, कौन हरै अब रोष।
लाग आपने भाग को, काको दीजै दोष ॥६८॥
इमि सोचत-सोचत झखत, आया निज पुर-तीर।
दीठि परी इकबार ही, हय गयंद की भीर ॥६९॥
हरि-दरसन तें दूरि दुख, भयौ, गयो निज देस।
गौतम-रिषि को नाउँ लै, कीन्हो नगर प्रवेश ॥७०॥

(सवैया)

वैसई राज-समाज वने, गज-बाजि घने मन संभ्रम छायौ।
वैसई कंचन के सब धाम हैं, द्वारिकै माहिं मनौं फिरि आयो॥
भौन बिलोकिवे को मन लोचव, सोचत ही सब गाँव मंझायो।
पूछत पाँड़े फिरे सब सों, पर झोपरी को कहुँ खोज न पायौ ॥७१॥

सुदामा

(कुण्डलिया)

'देव नगर कै जच्छपुर, हौं भटको कित आय?
नाम कहा यहि नगर को, सो न कहौ समुझाय॥
सो न कहौ समुझाय, नगर-वासी तुम कैसे?
पथिक जहाँ संभ्रमहि, तहाँ के लोग अनैसे॥
नगर०—'लोग अनैसे नाहिं, लखौ द्विज-देव नगर कै।
कृपा करी हरि-देव, दियो है देव नगर कै ॥७२॥

(कवित्त)

सुन्दर महल मनि-मानिक जटित अति,
सुबरन सूरज-प्रकाश मानौं दै रह्यौ।
देखत सुदामाजू को नगर के लोग धाये,
भेंटे अकुलाय जोई सोई पाँव छ्वै रह्यौ॥
बाँभनी के भूषन बिबिध बिधि देखि कह्यौ,
जैहौं हौं निकासौ सो तमासौ जग ज्वै रह्यौ।
ऐसी दसा फिरि जब द्वारिका-दरस पायौ,
द्वारिका तें सरस सुदामा पुर ह्वै रह्यौ॥७३॥

(दोहा)

कनक-दंड कर मैं लिए, द्वारपाल है द्वार।
जाय दिखायौ सबनि लै, 'या हैं महल तुम्हार'॥७४॥
कही सुदामा 'हँसत हौ, ह्वै करि परम प्रबीन।
कुटी दिखावहु मोहि वह, जहाँ बाँम्हनी दीन'॥७५॥
द्वारपाल सों तिन कही, 'कहि पठवहु यह गाथ।
आए बिप्र महाबली, देख होहु सनाथ'॥७६॥
सुनत चली आनन्दयुत, सब सखियन लै संग।
नूपुर किंकिनि, दुंदभी, मनहुँ काम चतुरंग॥७७॥
कही बाँभनी आयकै, यहै कंत निज-गेह।
श्रीजदुपति तिहुँलोक मैं, कीन्हों प्रगट सनेह'॥७८॥

सुदामा

हमैं कंत तुम जनि कहौ, बोलो बचन सँभारि।
इहैं कुटी मेरी हती, दीन बापुरी नारि॥७९॥

स्त्री

मैं तो नारि तिहारियै, सुधि सँभारिए कंत।
प्रभुता सुन्दरता दई, अद्भुत श्री भगवंत॥८०॥

सुदामा

(कवित्त)

टूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामैं परो दुःख काटौं कहाँ हेम धाम-री।
जेवर-जराऊ तुम साजे प्रति अंग-अंग,
सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छाम री॥
तुम तौ पटंबर री! ओढ़े हौ किनारीदार,
सारी-जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी॥
मेरी वा पड़ाइन तिहारी अनुहार ही पै,
बिपद-सताई वह पाई कहाँ पामरी?॥८१॥

ठाड़ी ह्वै पँड़ाइन कहत मंजु-भायन सों,
'प्यारे परौं पायन तिहारोई जु घरु है।
आए चलि हरों श्रम कीन्हों तुम भूरि दुख,
दारिद गमायो यौं हँसत गह्यो करु है॥
रिद्धि-सिद्धि दासी करि दीन्हीं अबिनासी कृस्न,
पूरन-प्रकाशी, कामधेनु कोटि बरु है!
चलौ पति भूलौ मति तुन्हैं दीन्ही जदुपति,
संपति सो लीजिए समेत सुरतरु है'॥८२॥

(दोहा)

समुझायो निज कंत कों, मुदित गई लै गेह।
अन्हवायो तुरतहिं उबटि, सुचि सुगन्ध सों देह॥८३॥
पूज्यो अधिक सनेह सों, सिंहासन बैठाय।
सुचि सुगन्ध अंबर रचे, बर भूषण पहिराय॥ ४॥
सीतल जल अचवायकै पानदान धरि पान।
धर्‌यो आय आगे तुरत, छबि रबि-प्रभा समान॥-५॥

करहिं चौंर चहुँ ओर तें, रंभादिक सब नारि।
पतिब्रता अति प्रेम सों, ठाढ़ी करै बयारि ॥८६॥
स्वेत-छत्र की छाँह मैं, राजत सक्र-समान।
बाहन गज रथ तुरँग बर, अरु अनेक सुभजान ॥८७॥
कामधेनु सुरतरु सहित, दीन्हीं श्री बलबीर।
जानि परी गुरुबंधु हरि, हरि लीन्हीं सब पीर ॥८८॥
बिबिध भाँति सेवा करी, सुधा पियायो बाम।
अति बिनीत मृदु बचन कहि, 'सब पूरो मन काम' ॥८९॥
लै आयसु तिय न्हाइ कर सुचि सुगन्ध सब लाइ।
पूजी गौरि सोहाग-हित प्रीति सहित सुख पाइ ॥ ०॥
षटरस चारि प्रकार के, भोजन रचे बनाय।
कंचन-थार मँगायकै, ता मैं धर्‌यो रचाय ॥९१॥
चंदन चौकी डारिकै, दासी परम सुजानि।
रतन जटित भाजन-कनक, भरि गंगाजल आनि ॥९२॥
कूजा कंचन रतनयुत, सुचि सुगन्ध जल-पूरि।
रच्छाधान समेत सो, जल-प्रकाश भर-पूरि ॥९३॥
रतन-जटित पीढ़ा-कनक, धर्‌यो जु बैठन काम।
मरकत-मनि चौकी धरी, कछुक दूरि छबि-धाम ॥९४॥
चौकी लई मँगायकै, पग धोवन को पाथ।
मनि-पादुका बिचित्र अति, धरि सलिल के साथ ॥९५॥
'चलिए भोजन करन कों,' कह दासी मृदु भाखि'।
उठे 'क्रस्न' सानंद कहि, 'धन्य धन्य हरि साखि' ॥९६॥
बसन उतारे जायकै, धोबत चरन-सरोज।
चौकी पै छबि देत यौं, जनु तनु धरे मनोज ॥९७॥
पहिरि पादुका बिप्र जब, पीढ़ा बैठे जाय।
रति तें अतिछबि आगरी, पति सों हँसि मुसुकाय ॥९८॥

विविध भाँति भोजन धरे, व्यंजन चारि-प्रकार।
जोरि पछिऔरी सकल, प्रथम कहे नहिं पार ॥९९॥
'हरिहिं समर्पौ कंत अब' कहा मंद हँसि बाम।
करि घंटा को नाद त्यों, हरि समर्पि लिय नाम ॥१००॥
अगिन जिमाय विधान सों, वैस्व देव करि नेम।
बलि काढ़ी जेंवन लगे करति पवन तिय प्रेम ॥१०१॥
वार-बार पूछत यहै, 'लीजै जो रुचि होय।
कृस्न-कृपा पूरन सबै, अबै परोसौं सोय ॥१०२॥
जेइँ चुके अचवन लगे, करन गये विश्राम।
रतन-जटित पालक कनक, देनो सुरेसम दाम ॥१०३॥
ललित बिछौना बिरचिकै, पाँयत कसिकै डोरि।
राखे बसन सुसेवकनि, रुचिर अतर सों बोरि ॥१०४॥
पानदान नेरे धर्‍यो, भरि बीरी छबि-धाम।
चरन धोय पौकेन लगे, करन हेत विश्राम ॥१०५॥
कोउ चँवर कोउ बीजना, कोउ सेवत पद चारु।
अति विचित्र भूषन सजे, गजमोतिन के हारु ॥१०६॥
करि सिंगार पिय पै गई, पान खाति मुसकाति।
'कहौ कथा सब आदि तें, किमि दीन्हीं यह भाँति ॥१०७॥
कही कथा सब आदि तें, राह चले की पीर।
सोवत जिमि ठाढ़े किये, नदी गोमती-तीर ॥१०८॥
गए द्वार जिहिं भाँति सों, सो सब करी बखान।
'कहि न जाय मुख लाख सों, कृस्न मिले ज्यों आन ॥१०९॥
कर गहि भीतर लै गये, जहाँ सकल रनिवास।
पग धोवन को आप ही, बैठे रमा निवास ॥११०॥
देखि चरन मेरे चल्यो, प्रभु नयनन तें नीर।
ताहीं सों धोये चरन, देखि चकित नर-नारि' ॥१११॥

बहुरि कही श्रीकृस्न जिमि, तंदुल लीन्हें आप।
भेंटे हृदय लगायकै, मेटे भ्रम संताप ॥११२॥
बहुरि कही जेवनार सब, जिमि कीन्हीं बहु भाँति।
बरनि कहाँ लगि हों कहौं, सब व्यंजन की पांति ॥११३॥
दिन प्रति अधिक सनेह सों, सपन दिखायो मोहि।
सो देख्यो परतच्छ ही, सपन न निसफल होहिं ॥११४॥
बरनि कथा यहि विधि सबै, कह्यो आपनो मोह।
कृस्न कृपानिधि भगत-हित, चिदानंद संदोह ॥११५॥

(कवित्त)

साजे सब साजबाज बाजि गज राजत हैं,
विविध रुचिर रथ पालकी बहल हैं।
रतन-जटित शुभ-सिंहासन बैठिबे को,
चौक प्रति कामधनु कल्पद्रुम लहलहैं॥
देखि-देखि भूषन वसन दासी दासन के,
सुख पाकसासन के लागत सहल हैं।
संपति सुदामाजू को जहाँ लौं दइ है प्रभु,
कहाँ लौं गनाऊँ जहाँ कंचन-महल हैं ॥११६॥
बाजिसाला गजसाला दीन्हें गजराज खरे,
ब्रजराज महाराज राजन-समान के।
बानक बिबिध बने मंदिर-कनक सोहैं,
मनि जरे मन मोहैं सब देवतान के।
हीरा, लाल ललित झरोखन मैं झलकत,
झिमझिम झूमक झूलै हैं मुकतान के।
जानी नहिं बिपति सुदामाजू कीं कहाँ गई,
देखिए विधान जदुपतिजू के दान के ॥११७॥

सुदामा

'कहूँ सपनेहूँ सुबरन के महल होते,
पौरि मनि-मंडप कलस कब धरते ?
रतन जटित बर सिंहसन बैठिबे कौं,
खरे ह्वै खवास मो पै चौंर कब ढरते ?
देखि राज-सामा निज बामा सों सुदामा कहै
कब ये भंडार मेरे रतनन भरते ?
जो पै पतिब्रता तू न देति उपदेश तो पै,
एती कृपा मो पै द्वारिकेस कब करते ? ।।११८।।

(दोहा)

उठे पहिरि अंबर रुचिर, सिहासन पर जाय।
बैठे प्रभुता देखिकै, सुरपति रह्यो लजाय ।।११९।।

(सवैया)

कै वह टूटी-सी छानी हती, कहूँ कंचन के सब धाम सुहावत।
कै पग मैं पनही न हती, कहँ लैं गजराजहु ठाढ़े महावत ।।
भूमि कठौर पै रात कटे, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहीं कोदो सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत ।।१२०।।

(दोहा)

धन्य धन्य जदुबंस-मनि, दीनन पै अनुकूल।
धन्य सुदामा सहित तिय, कहि बरसहिं सुर फूल ।।१२१।।

□□

शब्दार्थ

(१) **शब्दार्थ** —गनेश=गणेश (हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता, जिन्हें सिद्धि के देवता का सम्मान प्राप्त है।) सुमिरन –स्मरण, स्तुति, प्रार्थना। बरनन= वर्णन। जासो दारिद नास=जिनके नामस्मरण से निर्धनता का नाश होता है।

व्याख्या –कविवर नरोत्तमदास अपने काव्य का प्रारम्भ करने से पहले श्री गणेश जी का स्मरण करते हैं, जिससे उनके हृदय में निर्मल बुद्धि उत्पन्न हो। उसके उपरांत वे श्रीकृष्ण और सुदामा के चरित्र का वर्णन करते हैं, जिससे भक्तों के दारिद्र्य रूपी दुःख का विनाश हो जाता है और उन्हें सुख-शांति प्राप्त होती है।

विशेष—इस दोहे को हम इस रचना का मंगलाचरण मान सकते हैं। इस दृष्टि से कवि ने प्रबन्ध-काव्य की प्राचीन परम्परा का पालन किया।

(२) **शब्दार्थ**—तें=मे। निरवान=स्वर्ग, मोक्ष। सिंघुर-मुख—हाथी के समान मुख वाले, गणेश देवता। मूढ़=मूर्ख।

व्याख्या—गंगा-जल के पान से जैसे पापी मनुष्य को भी मुक्ति मिल जाती है वैसे ही हाथी के समान मुख वाले गणेश देवता की कृपा से मूर्ख व्यक्ति भी बुद्धिमान बन जाता है।

विशेष—इस दोहे में गणेश देवता की स्तुति की गई है, उन्हें बुद्धि-दाता का सम्मान दिया गया है।

(३) **शब्दार्थ**—कई=कितने ही। बरनन=वर्णन। माया=लक्ष्मी, सांसारिक वैभव। ताको=उनको। सु=सुन्दर।

व्याख्या—श्रीकृष्ण और सुदामा जन्म-जन्मान्तरों से मित्र रहे हैं। इस

रचना में कवि ने उनकी इसी आदर्श मैत्री का वर्णन किया है। यह कथा सुख, सम्पत्ति और वैभव प्रदान करने वाली है। इससे सुन्दर उपदेश प्राप्त होता है।

विशेष—इस दोहे में कवि ने श्रीकृष्ण और सुदामा की आदर्श-मैत्री और उसके महत्त्व की ओर इंगित किया है।

(४) **शब्दार्थ**—विप्र=ब्राह्मण। धाम=घर, निवास-स्थान। हिये=हृदय। हरि=श्रीकृष्ण।

व्याख्या—श्रीकृष्ण जी के मित्र सुदामा नामक ब्राह्मण सदैव अपने घर पर ही रहते और भिक्षा माँगकर अपने जीवन का निर्वाह करते थे। वे श्रीकृष्णजी के अनन्य भक्त थे और हृदय में उन्हीं का दिन-रात नाम जपते थे।

विशेष—इस दोहे में प्राचीन ब्राह्मण धर्म का निरूपण हुआ है, जिसके अनुसार ब्राह्मण के दो ही धर्म थे—भिक्षावृत्ति से निर्वाह करना और दिन-रात प्रभु का भजन करना।

(५) **शब्दार्थ**—घरनी=घरवाली, पत्नी, स्त्री। गहे=ग्रहण किये। वेद की रीति=वैदिक आचार-विचार, नियम, वेदों में स्त्रियों के जो धर्म कहे गये हैं। सलज=लज्जायुक्त। सुबुद्धि=अच्छी बुद्धि वाली।

व्याख्या—सुदामा की धर्म पत्नी पतिव्रता थी, वह वेद-शास्त्रों में प्रतिपादित नारी-धर्म का पालन करने वाली, लज्जाशील, सदाचारमयी और अच्छी बुद्धि वाली थी। पति-सेवा से उसका विशेष लगाव था। उसमें वह अत्यधिक रुचि रखती थी।

विशेष—इस दोहे में सुदामा-पत्नी सुबुद्धि के चारित्रिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन हुआ है।

(६) **शब्दार्थ**—कह्यौ=कहा। तिय=स्त्री, पत्नी। कृस्न=श्रीकृष्ण।

व्याख्या—सुदामा ने एक दिन अपनी पत्नी सुबुद्धि से कहा कि द्वारिकापति श्रीकृष्ण उसके बाल-सखा हैं। इस रहस्य से परिचित हो जाने के पश्चात् सुबुद्धि समय-समय पर इस प्रकार के अनुपम उपदेश दिया करती थी। वह अपने उपदेशों से अपने पति को श्रीकृष्ण के पास जाकर अपनी निर्धनता को समाप्त कराने की प्रेरणा दिया करती थी।

विशेष—इस दोहे में कथावृत्त की मौलिक उद्भावना का संकेत मिलता है। श्रीमद्भागवत में सुदामा-पत्नी पहले से ही यह जानती है कि श्रीकृष्ण उसके पति के मित्र हैं, किन्तु नरोत्तमदास अपनी इस रचना में सुदामा के मुँह से इस रहस्य का उद्घाटन कराकर चमत्कार की सृष्टि करते हैं। उससे रचना में नाटकीयता का संचार होता है।

(७) **शब्दार्थ**—हितू=हितैषी, मित्र। जदु-कुल-कैरव-चंद=यदुवंश रूपी रात्रि-कमल के लिए चाँद अर्थात् श्रीकृष्ण। जैसे चाँद को देखकर कुमुदनी का फूल खिल जाता है, उसी प्रकार यदुकुल श्रीकृष्ण को देखकर खिल जाता था। ते=वे। दारिद-संताप तें=निर्धनता के दुख से। किमि=क्यों, किसलिए। निर्द्वन्द्व—निश्चित।

व्याख्या—सुदामा-पत्नी सुबुद्धि अपने पति को समझाती हुई कहती है कि जिनके मित्र द्वारिकापति श्रीकृष्ण के समान महादानी हों; वे निर्धनता के दुःख से निश्चित क्यों न रहें अर्थात् उन्हें दारिद्र्य रूपी अभिशाप से अवश्य ही छुटकारा मिलना चाहिए और वे धन-वैभव को प्राप्त करें।

विशेष—इस दोहे में सुदामा-पत्नी सुबुद्धि के बुद्धि-कौशल और रूपक अलंकार का सौष्ठव द्रष्टव्य है।

(८) **शब्दार्थ**—वाम=स्त्री, पत्नी। वृथा=व्यर्थ। भोग=साँसारिक सुख।

व्याख्या—सुदामा ने अपनी पत्नी के विचार से असहमत होते हुए कहा कि साँसारिक सुख-वैभव, विलास आदि व्यर्थ हैं। प्रभु का भजन ही सत्य है और धर्म का पालन करते हुए जप, योग आदि में ध्यान लगाना ही समीचीन है।

विशेष—इसमें सुदामा की वैराग्य-भावना के साथ-साथ आत्मतुष्टि अलंकार का सौन्दर्य देखा जा सकता है।

(९) **शब्दार्थ**—लोचन=नेत्र, नयन। दुख-मोचन=दुख दूर करने वाले। भाल=माथा। पीत-वसन=पीले वस्त्र। वैजन्तीमाल=पाँच प्रकार के रत्नों से बनी माला, जिसे श्रीकृष्ण जी अपने गले में पहनते थे। संदीपनि=सुदामा

तथा श्रीकृष्ण के गुरू का नाम।

व्याख्या—सुदामा की विरक्ति को देखकर उसकी पत्नी सुबुद्धि उसे उपदेश देती हुई कहने लगी कि संदीपन गुरु के पास जो श्रीकृष्ण आपके साथ पढ़े हैं और जिन्हें आप अपना बालसखा मानते हैं, वे सांसारिक व्यक्ति नहीं हैं। उस का तो यह विश्वास है कि कमल के समान नेत्र वाले, दुःखों को दूर करने वाले, माथे पर तिलक लगाने वाले, कानों में कुण्डल धारण करने वाले, मस्तक पर मुकुट पहने, पीले वस्त्रों को ओढ़े, गले में वैजयन्ती माला पहने, हाथ में शंख, चक्र, गदा तथा कमल को लिए जिस चतुर्भुज मूर्ति का सबने परमात्मा के रूप में उल्लेख किया है, श्रीकृष्ण वस्तुतः उन्हीं के अवतार हैं। वे ही आज द्वारिकापुरी के स्वामी हैं। वे अनाथों के नाथ हैं, अतः यदि आप द्वारिकापुरी जायेंगे तो वे अवश्य ही हमारी निर्धनता को दूर कर देंगे।

विशेष—इस कवित्त में श्रीकृष्ण के भव्य रूप-चित्रण तथा उनके अवतार होने की ओर संकेत किया गया है। वे विष्णु के अवतार हैं और अनाथों के नाथ होने के कारण उन्हें दीनबन्धु कहा जाता है। परिकर, उपमा आदि अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से इस छन्द के भाव-सौष्ठव में वृद्धि हुई है।

(१०) **शब्दार्थ**—सिक्षक=शिक्षक। सिगरे=सारे। पद-पंकज=चरण-कमल। परिच्छा—परीक्षा। बावरि=पगली। भिच्छा=भिक्षा।

व्याख्या—सुदामा अपनी पत्नी का उपदेश सुनकर चिढ़ गये, उनका ज्ञानी रूप प्रबल हो उठा और वे अपनी पत्नी को समझाते हुए कहने लगे कि हे ब्राह्मणी! जो सुदामा सारे संसार को उपदेश देता है, उसे वह क्या शिक्षा दे रही है। जो व्यक्ति तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें धन-वैभव की कोई इच्छा नहीं होती है। वह तो हरि-भक्त है। उसे धन-दौलत की आकाँक्षा नहीं है। उसके हृदय में तो श्रीकृष्ण के चरण-कमल की चाह है, वह हजारों बार उसकी परीक्षा लेकर देख सकती है। धन-वैभव अन्य व्यक्तियों को चाहिए; ब्राह्मण का धन तो केवल भिक्षा ही है, उसी से वह अपना निर्वाह करता है। सुदामा ब्राह्मण है, सामान्य गृहस्थी नहीं। फलतः उसे धन का लोभ नहीं है।

विशेष—इस सवैया छन्द में एक आदर्श ब्राह्मण की जीवन-दृष्टि पर प्रकाश

डाला गया है। आदर्श ब्राह्मण धन-वैभव को नहीं वरन् प्रभु-भजन को ही अपना जीवन-लक्ष्य बनाता है। सुदामा इसी जीवन-दर्शन का प्रबल समर्थक था।

(११) **शब्दार्थ**—तिहुँलोकन=तीनों लोक=स्वर्ग, मर्त्य और पाताल। सिद्ध करो=जाओ, प्रस्थान करो (यह ब्रज का एक प्रचलित मुहावरा है।) मति=मति, राय। दीन ह्वै बोलै दीन भाव से बोलते हुए। पन=अवस्था। कन=अन्न के दाने, भीख। सो तिहुँपन क्यों कन माँगत डोले=वह तीसरी अवस्था अर्थात् बुढ़ापे में भी क्यों भिक्षा माँगता फिरे।

व्याख्या—सुदामा के सबल तर्क को सुनकर भी उसकी पत्नी सुबुद्धि सन्तुष्ट न हुई और अपनी धारणा को पुष्ट करती हुई कहने लगी कि द्वारिकापति श्रीकृष्ण तीनों लोकों के महादानी हैं। संसार उनका नाम स्मरण करके ही जीवित है। वे दीनबन्धु हैं। हे नाथ ! मेरे विचार से आप शीघ्र ही द्वारिका के लिए प्रस्थान कीजिए। जो प्रभु के द्वार पर जाकर अपने दुःखों के निवारण की पार्थना नहीं करते हैं, उन्हें साधारण लोगों के द्वार पर जाकर, दीन बनकर भिक्षा माँगनी पड़ती है। भगवान् श्रीकृष्ण जिनके मित्र हों, वह भला क्यों इस बुढ़ापे में द्वार-द्वार भीख माँगता फिरे ? अर्थात् आपको द्वार-द्वार भीख नहीं माँगनी चाहिए। श्रीकृष्ण से सहायता लेने में आपको संकोच करने की आपश्यकता नहीं है।

विशेष—इस छन्द में सुबुद्धि के तर्क उसके बुद्धि-कौशल को प्रदर्शित करते हैं। ऐसे ही तर्कों से वह अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करती है।

(१२) **शब्दार्थ**—छत्रिन=क्षत्रिय। पन=प्रण, प्रतिज्ञा, कर्त्तव्य। जुद्ध=युद्ध, लड़ाई। जुवा=युवा। बाजि=घोड़े। बैसे=वैश्य, व्यापारी वर्ग। सेवन-साजन=सेवा करना। कै=अथवा, या।

व्याख्या—सुदामा अपनी पत्नी के तर्क को काटते हुए कहने लगे कि क्षत्रियों का धर्म सेना (हाथी, घोड़े आदि) को सजाकर युद्ध करना है। वैश्यों का व्यवसाय, व्यापार एवं खेती करना है। शूद्रों का काम सेवा करना है। ब्राह्मणों का धर्म पढ़ना और तप करना है। उन्हें सुख-सम्पत्ति की चाह नहीं रहती। वे जीवन-निर्वाह के लिए भिक्षा माँगते हैं; उन्हें भिक्षा माँगने में किसी प्रकार की लज्जा नहीं करनी चाहिए।

विशेष—इस छन्द में सुदामा द्वारा समाज के चारों वर्गों के धर्म की व्याख्या की गई है। उसी के अनुसार सुदामा भिक्षा माँगकर निर्वाह करने में अपना अपमान नहीं समझता है।

(१३) **शब्दार्थ**—कोदो-सवाँ—एक तरह का सस्ता और मोटा अन्न। जुरतो=मिलता। मिठौती=मिठाई। सीत बितीत=सर्दियाँ कटती हैं, गुजरती हैं। हौं=मैं। हठती=हठ करके रहती। पै तुम्हें न हठौती=तुम्हें ठेल कर नहीं भेजती। पेलि पठौती=ठेल कर भेजती।

व्याख्या—सुदामा की आदर्शवादिता से कुछ अधीर होकर उसकी पत्नी कहने लगी कि उसे दूध, दही एवं मिठाई की चाह नहीं है। उसे तो जीवित रहने के लिए यदि कोदो-सवाँ जैसे मोटे अनाज और जाड़े में मोटे वस्त्र ही मिल जाते तो वह दृढ़तापूर्वक रहती और आपसे द्वारिकापुरी जाने के लिए हठ न करती। पर यहाँ तो स्थिति वड़ी विकट है, कभी पेट भर अन्न नहीं मिला है और जाड़ा सिसियाते ही व्यतीत हुआ है। घर में दरिद्रता का ऐसा साम्राज्य छाया हुआ है कि रोटी बनाने के लिए समुचित तवा और कठौती तक नहीं है। उसे यदि यह पता न चलता कि द्वारिकापति श्रीकृष्ण जैसे महादानी आपके बाल-सखा तथा सहपाठी हैं तो वह कभी भी आपको द्वारिका जाने के लिए बाध्य न करती।

विशेष—सुदामा के घोर दारिद्रय को व्यंजित करने के लिए यह छन्द, विशेषतः इसके ये शब्द—'टूटो तवा अरु फूटी कठौती' अत्यन्त मार्मिक हैं। इससे सुदामा के घर की दयनीय स्थिति एक चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

(१४)**शब्दार्थ**—जक ठानी=किसी बात की बार-बार रट लगाना। वक=बकवाद। जाम=पहर। दैहें लदाय=भर देंगे। लढ़ा=बैलगाड़ी। अटारी अटा=कोठी, भव्य भवन। छानी=छप्पर। जौ पै=यदि। काहू पै=किसी से भी। अजानी=भोली, अनजान, अज्ञात।

व्याख्या—भाग्यवादी सुदामा अपनी पत्नी को समझाते हुए कहने लगे कि तुम्हें तो बस सब कुछ छोड़कर दिन-रात अपनी निर्धनता की ही चिंता लगी रहती है। क्या वह यह समझती है कि उसके (सुदामा के) द्वारिकापुरी पहुँचते ही श्रीकृष्ण उसे गाड़ियाँ भर-भर कर धन-वैभव दे देंगे। क्या उसे इस बात का

ज्ञान नहीं है कि जिनके भाग्य में टूटी-फूटी झोपड़ी लिखी हो, उन्हें ऊँचे भव्य भवन नहीं मिल सकते हैं। फलतः उसकी भोली पत्नी को यह समझ लेना चाहिए कि यदि उनके भाग्य में निर्धनता ही लिखी हुई है तो उसे कोई दूर नहीं कर सकता है। भाग्य का लिखा कोई नहीं मिटा सकता।

विशेष—इस छन्द में भाग्य की प्रबलता का समर्थन किया गया है। उससे सुदामा के चारित्रिक वैशिष्ट्य का भी उद्घाटन होता है।

(१५) **शब्दार्थ**—पैज = प्रतिज्ञा। बेरे = समय। जिहि बेरे = जिस समय। पटकोट = वस्त्रों का ढेर। चहुँ फेरे = चारों ओर। ग्राह = मगरमच्छ, घड़ियाल। गयंद = हाथी, यहाँ गजेन्द्र का अर्थ है। निहचै = निश्चय, विश्वास। लोचन कोर = एक नजर भर। हेरे = देखने से।

व्याख्या—सुदामा के भाग्यवादी विचारों से असहमत होकर उसकी पत्नी कहने लगी कि श्रीकृष्ण सब कुछ कर सकते हैं। उनमें अलौकिक शक्ति है। जब हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को खंभे में बाँध दिया था तब भगवान् श्रीकृष्ण ने ही प्रकट होकर प्रह्लाद की प्रतिज्ञा को पूर्ण किया था। चीरहरण के समय ज्यों ही द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण का हृदय में ध्यान किया, त्यों ही उन्होंने दुर्योधन की सभा में वस्त्रों का ढेर लगाकर उसकी लाज बचाई। उन्होंने ग्राह के फंदे में फंसे हुए हाथी की रक्षा की। हे स्वामी! उसे तो श्रीकृष्ण की कृपा का पूर्ण विश्वास है। हमारी निर्धनता से हजार गुनी बड़ी निर्धनता भी उनकी एक कृपा-दृष्टि से दूर हो सकती है। वे सभी कुछ करने में समर्थ हैं।

विशेष – इस छन्द में श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप का प्रतिपादन हुआ है। वे सर्वशक्तिमान तथा भक्तवत्सल हैं।

(१६) **शब्दार्थ**—चक्कवै = चक्रवर्ती राजा। चकिसे = चकित से, हैरान से भूप = राजा। किन्नर = एक प्रकार के देवता जो संगीत में प्रवीण होते हैं। जच्छ = यक्ष, कुबेर के गण। लौं = तक। ठाऊँ = स्थान। तैं = तूने। बिलोक्यौं = देखा। लोकन के मुखिया = लोकों के स्वामी। पैठन पाऊँ = प्रवेश करने पाऊँ

व्याख्या—सुदामा अपनी पत्नी के बार-बार कहने पर द्वारिकापुरी जाने में अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहने लगे कि द्वारिका पहुँच जाना तो सरल

है,। पृथ्वी—किन्तु श्रीकृष्ण के दरबार तक पहुँचना सरल नहीं है। उनके महल के द्वार पर अनेक चक्रवर्ती राजा चकित-से होकर खड़े रहते हैं और कई राजा तो वहाँ इस प्रकार चुपचाप खड़े रहते हैं, मानो मार्ग भूलकर वहाँ आ गये हों। निवासियों की तो बात क्या, बड़े-बड़े देवता, गंधर्व, किन्नर, यक्ष भी प्रातः से सायं तक वहाँ खड़े रहते हैं, उन्हें द्वारिकापति श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हो पाते। उसने (सुबुद्धि) तो दरबार देखा नहीं इसलिए वह उसे वहाँ की महिमा समझाने में असमर्थ है। उनके दरबार के अन्दर तो लोकों के स्वामी भी नहीं जा सकते, उन्हें भी बाहर ही रुकना पड़ता है। द्वारिकाधीश के ऐसे भव्य दरबार में दीन-हीन, निर्धन सुदामा भला कैसे प्रवेश पा सकता है? अर्थात् उसका वहाँ जाकर श्रीकृष्ण से मिलना सम्भव नहीं है।

विशेष—इस छन्द में श्रीकृष्ण के भव्य दरबार की भव्य शोभा तथा महानता का उद्घाटन हुआ है और उसीके माध्यम से सुदामा अपनी विवशता व्यक्त करते हैं।

(१७) **शब्दार्थ**—तिमि = उसी तरह। अन्तरजामी = अन्तर्यामी, मन की बात जानने वाले। तिहारी = तुम्हारी। सिख = शिक्षा। सुधि - खबर।

व्याख्या—सुदामा-पत्नी श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी बताकर अपने पति को निस्संकोच द्वारिकापुरी जाने का आग्रह करती हुई कहती है कि भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं। उसकी इस बात को वे मान लें। भले ही उनके द्वार पर अनेक राजा भूले हुए-से खड़े रहते हों, बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा, देव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और लोकपाल भले ही उनके द्वार पर रोक दिये जाँय किन्तु आपके साथ ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि यदि वे द्वारिकापुरी जाएंगे तो श्रीकृष्ण सबको छोड़कर पहले उन्हीं की खबर लेंगे अर्थात् उनका पूर्ण स्वागत होगा और उन्हें मिलने के लिए कोई नहीं रोकेगा।

विशेष—इस छन्द में सुदामा-पत्नी का यह तर्क अत्यन्त सार्थक तथा प्रभावशाली है कि श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं और सुदामा को उन तक पहुँचने और मिलने में कोई बाधा नहीं आएगी। वस्तुतः सुबुद्धि का बुद्धि-कौशल सराहनीय है।

(१८) **शब्दार्थ**—विलम्ब = देरी। सदाई = सदैव, सदा। याहि तें = इसी

से । भावत = अच्छी लगती है । ज़ौ जो । निबहै = निर्वाह होगा । सुरेसहु = इन्द्र । ठकुराई = प्रभुता, स्वामी होना ।

व्याख्या—सुदामा श्रीकृष्ण को दीनदयाल मानते हुए, उन्हीं के प्रेम तथा भक्ति को जीवन का सर्वस्व घोषित करता है । उसके विचार से भी श्रीकृष्ण के दरवार में पहले निर्धनों की ही सुनवाई होती है । उन्होंने द्रौपदी की लाज वचाने में, हाथी की मगरमच्छ से रक्षा करने में और प्रह्लाद की प्रतिज्ञा पूर्ण करने में, तनिक भी देर न की । वे वास्तव में दीनदयालु हैं, इसी से वह निर्धनता को पसन्द करता है । उसकी यह हार्दिक इच्छा है कि जिस प्रकार अब तक उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया उसी प्रकार शेष जीवन भी व्यतीत हो जाता तो बहुत अच्छा होता । यदि भगवान श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं है तो इन्द्र देवता का पद भी व्यर्थ है । द्वारिकापुरी जाने से धन-वैभव तो अपार मिल सकता है किन्तु प्रभु-भक्ति में कमी आ जाने से वह सभी कुछ व्यर्थ होगा । फलतः इन्द्र देवता के पद से निर्धनता अच्छी है, जिसके रहते हम प्रभु-भक्ति बनाए रख सकते हैं ।

विशेष—इस छन्द में श्रीकृष्ण का दीनदयालु रूप तथा सुदामा का हरि-भक्त रूप साकार हो उठे हैं । सुदामा की निष्ठा तथा सच्चा भक्ति-भाव स्तुत्य है ।

(१९) **शब्दार्थ**—हितु = हितैषी, मित्र । पट = वस्त्र । जग्य = यज्ञ । पित्रई = बाप-दादा । विमुख – प्रतिकूल । अगत्रई = पहले से ही । केतौ = कितना । अलसात = आलस्य क्यों करते हो । विचित्रई = विचित्रता । जौ पै = जो कहीं । मित्रई = मित्रता । तौ पै = तो फिर । एते = इतने ।

व्याख्या—सुदामा-पत्नी अपने बुद्धि-कौशल का सदुपयोग करती हुई कहने लगी कि उन्होंने अब तक फटे-पुराने वस्त्र पहने, टूटी-फूटी झोंपड़ी में दिन व्यतीत किए, भिक्षा मांगकर भोजन किया और कभी इतना धन नहीं पाया कि यज्ञ अदि करके देवता-पितरों को संतुष्ट करते, फलतः वे सदैव प्रतिकूल रहे । भगवान श्रीकृष्ण दीनबन्धु हैं, वे आपको दुखी देखकर दया करेंगे । वह यह बात पहले से ही जानती है कि श्रीकृष्ण आपको बहुत कुछ देंगे, फिर भी न जाने क्यों द्वारिकापुरी जाने में आप आलस्य कर रहे हैं । वहाँ जाने में आपको लज्जा

नहीं करनी चाहिए। विपत्ति पड़ने पर मित्र के पास जाना सर्वथा उचित है, इसमें किसी प्रकार की कोई विचित्रता नहीं है। कृष्ण जैसे दयालु तथा दानी से मित्रता होने पर भी यदि आप जीवन-भर निर्धनता में ही दिन काटें तो उनकी मित्रता किस दिन काम आएगी अर्थात् मित्रता की कसौटी तो यही है कि वह समय पर काम आए। इसलिए आपको अपनी मैत्री से लाभान्वित होना चाहिए।

विशेष – इस छन्द में एक ओर सुदामा के दारिद्रय का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। और दूसरी ओर उसकी पत्नी सुबुद्धि के बुद्धि वैभव का अति सुन्दर रूप देखने को मिलता है। उसके तर्क अत्यन्त सटीक तथा अकाट्य हैं।

(२०) **शब्दार्थ**—नीकी=उचित, अच्छी। तैं=तुम। प्रीति सरसाइए= प्रेम बढ़ाना चहिए। जेंइए=भोजन कीजिए। आपहु=आप भी। जेंवाइए= भोजन कराइए। जोरि बैठत समाज भूप=राजाओं की सभा लगाकर। सकुचाइए=लज्जा का अनुभव करना।

व्याख्या—सुदामा अपनी पत्नी की बातों में अपना हित देखकर भी उनका समर्थन नहीं करता है। उसके विचार से उसकी पत्नी ने यद्यपि उसके हित की बात कही है कि वह धन-वैभव पाने के लिए द्वारिकाधीश के पास चला जाए किन्तु उससे मित्रता नष्ट हो सकती है। सच्ची मित्रता तो नित्य-प्रति विकसित होनी चाहिए। जब मित्र, मित्र से मिले हृदय प्रसन्न तथा आनन्दित होना चहिए। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि यदि मित्र के घर जाकर भोजन किया जाए तो उसे भी अपने घर बुलाकर भोजन कराना चाहिए। दोनों के जीवन-स्तर में समानता होनी चाहिए। श्रीकृष्ण महाराज हैं, बड़े-बड़े राजाओं का समाज उनके पास जुटता है। अपनी इस दीन-हीन दशा में जाकर, उन्हें लज्जित करना या स्वयं लज्जित होना समीचीन नहीं है। अपने भाग्य में ईश्वर ने जो सुख-दुःख के दिन लिख दिये हैं वे तो काटने ही पड़ेंगे किन्तु विपत्ति पड़ने पर दुःख के समय मित्र के द्वार पर कभी भी नहीं जाना चाहिए।

विशेष—इस छन्द में सुदामा मित्रता के लिए समानता और स्वार्थहीनता को आवश्यक मानते हैं। अपनी इस धारणा के अनुसार द्वारिकापुरी नहीं जाना चाहते हैं।

(२१) **शब्दार्थ**—विदित=प्रसिद्ध । चटसार=पाठशाला । कैयोबार= कितनी ही बार । लोचन अपार=असंख्य नेत्र, दिव्य दृष्टि वाले । सहस्रगुनी= हजार गुनी ।

व्याख्या—सुबुद्धि श्री कृष्ण के विभिन्न गुणों का उल्लेख करके अपने पति सुदामा को उनके पास जाने की प्रेरणा देती हुई कहती है कि वे ब्राह्मणों के भक्त हैं, संसार प्रसिद्ध दीनबन्धु अर्थात दीनों का पालन करने वाले हैं। वे महादानी हैं और सभी की सुधि लेने वाले हैं । कई बार आप कह चुके हैं कि वे आप के साथ एक ही पाठशाला में पढ़े हैं। यह कभी नही हो सकता कि असंख्य नेत्रों वाले श्रीकृष्ण आपको न पहचानें । आप दीन हैं, वे दीनबन्धु हैं। आप जैसा और कौन दीन-हीन होगा ? जिसे वे अपने मन में नहीं जानेंगे । श्रीकृष्ण आपका नाम सुनकर चार गुणा प्रेम मानेंगे, किन्तु आपके द्वार पर पहुचने पर उनकी प्रीति सौगुनी और आपको देख लेने पर सहस्रगुनी बढ़ जाएगी। ऐसी स्थिति में आपको द्वारिकापुरी अवश्य जाना चाहिए ।

विशेष—इस छन्द में श्रीकृष्ण के कृपालु, दीनबन्धु एव मित्र-वत्सल रूप को उभारा गया है। उसी का आश्रय लेकर सुबुद्धि अपने पति सुदामा को उनके पास भेजना चाहती है।

(२२) **शब्दार्थ** --चूक=भूल, कमी । मों=मुझसे । पै दहैं=अवश्य देंगे । लायकै=लायक, योग्य । या विधि=इस प्रकार। पन द्वै=दो पन, आधी उम्र । बिरधापन=वृद्धावस्था, बुढ़ापा । केतौ=कितना । होहुँ कनवड़ो=आभारी होऊँ कृतज्ञ होऊँ ।

व्याख्या—(सुदामा ने कहा—) श्रीकृष्ण वास्तव में बड़े प्रेमी हैं । उनके प्रेम में कोई कमी नहीं । यदि मैं उनके दर्शन करने जाऊँगा तो मुझे देखते ही वे उठ कर (मुझे) गले से लगा लेंगे। उनके द्वार पर जाने से वे मुझे कुछ धन-सम्पति आदि भी अवश्य देंगे। (फिर भी मैं वहाँ जाना नहीं चाहता) । बाल्यावस्था और युवावस्था मैंने गरीबी में ही बिता दी । अब वृद्धावस्था आ गयी है । अब जीना ही कितने दिन है कि श्रीकृष्ण का अहसानमंद बनूँ ।

विशेष—इस छन्द में सुदामा का स्वाभिमानी व्यक्तित्व मुखरित हो उठा

है। वे आत्म-सम्मान के बदले धन-वैभव नहीं चाहते हैं।

(२३) **शब्दार्थ**—ठाकुर = स्वामी। प्रसंग = विषय। हितू = मित्र। जिय में = हृदय में। कहा = क्या; व्यर्थ। सिधाइए = सिधारिये; जाइये।

व्याख्या—(सुदामा की पत्नी ने कहा—) यदि दीनों पर दया करने वाले कृष्ण के समान मित्र मिल जायँ तो उनका हजार बार अहसान मानने में कोई बुराई नहीं है। श्रीकृष्ण तीनों लोकों के स्वामी हैं। उनके दरबार में जाने में किसी तरह की लज्जा नहीं होनी चाहिये। हे नाथ! आप इधर-उधर की सब बातें छोड़कर मेरी बात मानें। साधारण मनुष्यों के द्वार पर जाने से क्या लाभ है? आप द्वारिकापति श्रीकृष्ण के यहाँ जाने के लिए प्रस्थान कीजिये।

विशेष—इस सवैया छन्द में सुबुद्धि अपने बुद्धि-कौशल को प्रदर्शित करती हुई अपने पति सुदामा को श्रीकृष्ण के पास जाने और उनसे धन-वैभव प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। उसका मुख्य तर्क यही है कि द्वार-द्वार भिक्षा माँगने से तो यह कहीं उत्तम है कि महादानी श्रीकृष्ण का द्वार खटखटाया जाये।

(२४) **शब्दार्थ**—जाम = याम; प्रहर। जक = एक ही बात को बार-बार कहना; जिद्द। जा = यदि; जो। जो न कहौ करिए = यदि तेरा कहा न मानें। अपनी गति हेरे = अपनी दीन दशा देखकर। छरिया = द्वारपाल। तेरे = निकट। चाउर = चावल।

व्याख्या—(सुदामा ने कहा—) आठो पहर तुम एक ही बात रटती हो, द्वारिका जाइये, द्वारिका जाइये। अगर तुम्हारी बात नहीं मानता हूँ तो तुम्हें दुःख होगा। पर अपनी दीन दशा देख कर कहीं जाने की इच्छा नहीं होती। श्रीकृष्ण के द्वार पर द्वारपाल खड़े रहते हैं। राजा भी उनके पास नहीं पहुँच पाते हैं। तुम इस बात पर भी तो विचार करो कि उन्हें भेंट देने के लिए मेरे पास पाँच सुपारी और चार चावल भी नहीं हैं। फिर, मैं उनके पास जाऊँ तो कैसे?

विशेष—सुदामा अपना आत्म-सम्मान खोकर श्रीकृष्ण से धन-सम्पत्ति प्राप्त नहीं करना चाहते हैं, किन्तु पत्नी के सबल तर्कों को काटने में असमर्थ होकर अन्त में यह बहाना बनाते हैं कि श्रीकृष्ण को भेंट करने के लिए उसके पास न सुपारी है और न चावल।

(२५) शब्दार्थ—परोसिनी=पड़ोसिन। पाव-सेर=एक पाव। हुलास=उत्साह; प्रसन्नता।

व्याख्या—यह सुनकर ब्राह्मणी पड़ोसिन के पास गयी और पाव-भर चावल बड़े हुलास से ले आयी।

(२६) शब्दार्थ—सिद्धि करी=प्रस्थान किया। गनपति=गणेशजी। दुपटिया=दुपट्टा। खूँट=छोर। वाली-बूट=गेहूँ की बालियाँ और हरे चने।

व्याख्या—चावलों को दुपट्टे के कोने में बाँध कर सुदामाजी ने श्रीगणेशजी का स्मरण करके द्वारिका के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में (पड़े खेतों से) बालियाँ और हरे चने माँग कर खाते हुए सुदामाजी चलते गये।

(२७) शब्दार्थ—दूखि उठे=दर्द करने लगे। पयार=पुआल।

व्याख्या—तीन दिनों तक चलते-चलते जब सुदामाजी के पाँव थक गये, तो वे एक जगह घास-पुआल बिछा कर सो गये।

(२८) शब्दार्थ—पीर=दुःख। ठाढ़ो कियो=खड़ा कर दिया।

व्याख्या—अन्तर्यामी श्रीकृष्ण को अपने भक्त मित्र की यह दशा मालूम हो गयी। (वे समझ गये कि यह दुर्बल ब्राह्मण पैदल द्वारिका पहुँचने का कष्ट न सह सकेगा) अतः, उन्होंने नींद की हालत में ही सुदामा को उठा कर गोमती के तीर पर ला रखा।

विशेष—इस दोहा छन्द में श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप का निरूपण हुआ है। वे अन्तर्यामी हैं; दीनबन्धु हैं। अपने भक्तों के कष्टों को दूर करने वाले हैं। उसी समय वे सोये हुए पीड़ित सुदामा को गोमती नदी के किनारे पहुँचाते हैं।

(२९) शब्दार्थ—दरस=दर्शन। भो=हुआ। नित-निमित्त=संध्या, तर्पण, अर्घ्य इत्यादि नित्य-कर्म।

व्याख्या—जब सुदामा की नींद टूटी तो उन्होंने देखा कि वे गोमती के तीर पर हैं। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ पर उन्होंने स्नान-ध्यान, पूजन-पाठ आदि नित्य के काम किये।

विशेष—इस दोहा छन्द में सुदामा की कर्म-काण्डी-प्रवृत्ति का निरूपण हुआ है।

(३०) **शब्दार्थ**—घसिकै=घिस कर। सुमिरिनी=जपमाला, जिससे मंत्रों की संख्या गिनने का काम लिया जाता है। दिव्य=अलौकिक; अति सुन्दर। द्वारावती=द्वारिकापुरी।

व्याख्या—सुदामाजी ने चन्दन घिस कर माथे पर तिलक लगाया। हाथ में माला लेकर फेरी। इसके बाद द्वारिका के अलौकिक सौन्दर्य को देख मानो वे सनाथ हो गये।

(३१) **शब्दार्थ**—दीठि=आँख; नजर; दृष्टि। सुवर्नमई=सुनहले; स्वर्ण-मय। सरस=सुन्दर; बढ़ कर। भौन=भवन; प्रासाद। साधि-साधि मौन = मौन साध कर। सुदामैं=सुदामा को। धाय=दौड़कर। पौरजन=पुरजन; नगर के लोग। गहे पाँय=पाँव पकड़ लिये। गौन=गमन। कहाँ कीन्ह गौन हैं=कहाँ जा रहे हैं; कहाँ चले हैं? धीरज अधीर के=दुखी को धीरज देने वाले। हरन पर पीर के=दूसरों के कष्टों का हरण करने वाले। बलबीर=श्रीकृष्ण।

व्याख्या—द्वारिका के सुनहले महलों को देख कर सुदामाजी की आँखें चौंधिया गयीं। वहाँ के महल एक-से-एक सुन्दर थे। बिना पूछे वहाँ कोई किसी से बात नहीं करता था। देवताओं की तरह सभी मौन साध कर बैठे थे। (सुदामाजी को अनजान समझ) उन्हें देख कर नगरवासियों ने दौड़ कर उनके पाँव पकड़ लिये और पूछा—हे ब्राह्मण देवता! कृपा करके बतलाइये कि आप कहाँ चले हैं? सुदामा ने उत्तर दिया, अधीरों को धीरज देने वाले और दुखियों की पीड़ा तथा कष्ट को दूर करने वाले बलराम के भाई श्रीकृष्ण के महल कहाँ हैं? (मुझे वहीं जाना है।)

विशेष—इस कवित्त में द्वारिकापुरी की अपार शोभा, उसके निवासियों का शान्त स्वभाव, शालीनता, ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम के साथ-साथ श्रीकृष्ण के दीनबन्धु रूप को चित्रित किया गया है। पूर्णोपमा अलंकार सौष्ठव भी द्रष्टव्य है।

(३२) **शब्दार्थ**—काहू=किसी ने। कर गहि लीन्हौं आय=आकर हाथ पकड़ लिया। दीनद्याल=दीनदयालु।

व्याख्या—दीन-हीन समझ कर एक व्यक्ति ने उनका हाथ पकड़ लिया और

उन्हें श्रीकृष्णजी के राजप्रसाद के द्वार पर पहुँचा दिया।

(३३) **शब्दार्थ**—द्विज=ब्राह्मण। दंड-प्रनाम—दण्डवत; अभिवादन; साष्टांग प्रणाम। भाषिए=कहिये। सकुल=वंश-परिचय सहित।

व्याख्या—ब्राह्मण समझ कर द्वारपाल ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—"हे ब्राह्मण ! कृपा करके अपने नाम और कुल का परिचय दीजिये (जिससे मैं आपके आगमन की सूचना श्रीकृष्ण तक पहुँचा दूँ)।

(३४) **शब्दार्थ**—ब्रजराज=ब्रज के राजा; श्रीकृष्ण। गाथा=गाथा; वृत्तान्त।

व्याख्या—सुदामा ने द्वारपाल से कहा, मेरा नाम सुदामा है। मैं श्रीकृष्ण के साथ पढ़ता था। मैं ब्राह्मण-वंश का हूँ। इतना सुनकर श्रीकृष्ण सब कुछ समझ जायेंगे।

(३५) **शब्दार्थ**—चलि तहँ गयो=वहाँ चला गया। हाथ जोरि=हाथ जोड़ कर। बोल्यौ=बोला।

व्याख्या—द्वारपाल ने श्रीकृष्ण के पास जाकर, हाथ जोड़ कर और शीश नवा कर कहा—।

(३६) **शब्दार्थ**—पगा=पगड़ी। झगा=अँगरखा; कुर्त्ता। तन=शरीर। को=कौन। जाने को आहि=न जाने कौन है। केहि=किस। बसै केहि ग्रामा=न जाने किस गाँव में रहता है। लटी-दुपटी=पुराना फटा हुआ दुपट्टा। उपानह=जूता। पाँय=पाँव में। पाँय उपानह की नहिं सामा=पैरों में जूते भी नहीं हैं। रह्यो चकि=विस्मय से चकित हो रहा है। वसुधा=धरती; स्थान; भवन। अभिरामा=अभिराम; सुन्दर। रह्यो चकि सों वसुधा अभिरामा=यहाँ का वैभव देख कर चकित हो रहा है। धाम=महल; मकान।

व्याख्या—हे प्रभु ! द्वार पर एक बहुत दुबला-पतला ब्राह्मण खड़ा है। उसके माथे पर न पगड़ी है, न देह पर कुर्त्ता। न जाने कौन है, कहाँ घर है ? वह एक फटी-पुरानी धोती पहने है। उसके पैरों से जूते भी नहीं हैं। बड़ी देर से वह यहाँ का वैभव देखकर चकित हो रहा है। वह आपके महलों का पता पूछ रहा है और अपना नाम 'सुदामा' बताता है।

विशेष—इस सवैया छन्द में सुदामा की दयनीय स्थिति का अत्यन्त मर्म-

स्पर्शी चित्रण हुआ है। कविवर नरोत्तमदास ने उसकी दीन-हीन दशा तथा मनः-स्थिति के उद्घाटन में अपना कवि-कौशल प्रकट किया है।

(३७) **शब्दार्थ**–द्वारपालक = द्वारपाल; दरबान। छाँड़े = छोड़कर। जी की गति = हृदय की दशा। को = कौन। धाय = दौड़ कर। गहे पाँय = पैर पकड़ लिये। भेंटे लपटाय = गले से लिपट कर मिले। ऐसे दुख सानै को = दुःख में इस प्रकार कौन सम्मिलित होता है। कुसल = कुशल। विपदा = पहिचानै को = इस विपत्ति में तुम्हारे विना कौन पहचान सकता है? जैसी तुम करी = मानै को = हे दया के सागर! जैसा प्रेमपूर्ण व्यवहार तुमने मेरे साथ इस विपत्ति में किया वैसा दूसरा कौन कर सकता है?

व्याख्या—जैसे ही कृष्ण ने द्वारपाल के मुख से सुदामा ब्राह्मण का नाम सुना, वैसे ही सब काम-धाम छोड़ कर हाथ जोड़े और दौड़ पड़े। उस समय उनके हृदय की दशा कैसी रही होगी, इसे बतलाया नहीं जा सकता। उन्होंने सुदामा के पैर पकड़ लिये और उन्हें गले से लगा लिया। दुःख में इस प्रकार सम्मिलित कौन होता है? सुदामा की दीन दशा देखकर श्रीकृष्ण की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने सुदामा से कुशल समाचार पूछा। सुदामा ने कहा, (मैं विपत्ति में हूँ) तुम्हारे सिवा, इस विपत्ति के समय और मुझे पहचानता ही कौन? हे दया के सागर! जैसा प्रेमपूर्ण व्यवहार तुमने मेरे साथ किया वैसा दूसरा और कौन कर सकता है? दीन-दुखियों पर ऐसी कृपा तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता।

विशेष—इस कवित्त में श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री के भव्य रूप का निरूपण हुआ है। वे अपने बाल-सखा सुदामा का नाम सुनते ही बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत करते हैं। उसे गले लगकर मिलते हैं, उसकी दयनीय स्थिति को देखकर अपनी आँखों में आँसू भर उसका कुशल समाचार पूछते हैं। धन्य है यह आदर्श मित्र-वत्सलता। स्वभावोक्ति अलंकार का सौष्ठव की दर्शनीय है।

(३८) **शब्दार्थ**—लोचन = आँख; नैन। पूरि = भरी। लोचन पूरि रहे जल सो = आँखें आँसू से भर गयीं। दूरि तें = दूर से ही। दुख मेट्यो = दुःख हो गया। सुरनायक = इन्द्र। हिय माँझ = हृदय में। कलपद्म = नन्दनवन का वृक्ष-

विशेष, जो मनोवांछित फल देता है। खखेट्यौ=खटका हुआ, आशंका हुई। कम्प''सरसो=कुबेर का कलेजा काँपने लगा। परसो पग=पैर छूते ही। जात''समेट्यौ=सोने का सुमेरु सिकुड़ने लगा। राउ=राजा। अंक भरि=अँकवार भर कर। रमापति=विष्णु, कृष्ण।

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने नेत्रों में जल भर कर जब सुदामा की ओर दूर से देखा, तभी सुदामा के सारे दुःख दूर हो गये। जब उन्होंने सुदामा के पैर पकड़े तब इन्द्र के मन में यह भय हुआ कि कहीं भगवान् इन्द्रासन ही सुदामा को न दे दें। कल्पवृक्ष के मन में यह खटका हुआ कि कहीं हमें ही न भगवान् दान कर दें। कुबेर का हृदय यह सोच कर काँप उठा कि कहीं भगवान् त्रिभुवन की सारी सम्पत्ति सुदामा को न दे दें। सोने का पर्वत सुमेरु जैसे अपने-आप में सिकुड़ने लगा कि कहीं उपहारस्वरूप वही न भेंट कर दिया जाय। (मगर अब देना शेष ही क्या रह गया था) जब श्रीकृष्ण ने सुदामा को अपनी भुजाओं में प्रीतिवश भर लिया, तभी वे भिखारी से राजा हो गये।

[कवि ने परोक्ष-रूप से यहाँ यह संकेत किया हैं कि श्रीकृष्ण वास्तव में तीनों लोकों के स्वामी हैं, इन्द्र, कुबेर आदि उनके इशारे पर चलने वाले सेवक हैं। उनके दर्शन से ही सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं और उनकी कृपा से सारी सम्पदा प्राप्त हो जाती है।]

विशेष—इस सवैया छन्द में श्रीकृष्ण के आलौकिक रूप की ओर संकेत किया गया है। वे तीनों लोकों के स्वामी हैं, इन्द्र, कुबेर आदि उनके संकेतों पर कार्य करते हैं, उनके दर्शन-मात्र से ही सभी सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं और वे अपार धन-वैभव प्रदान करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त इस छन्द में चंचलातिशयोक्ति एवं परिकर अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है।

(३९) **शब्दार्थ**—त्रिभुवन=तीनों लोक। राय=राजा। अंतःपुर=रनिवास, रंगमहल। भेंटि=मिल कर। भली विधि=अच्छी तरह। त्रिभुवन-राय=श्रीकृष्ण। दूजो=दूसरा।

व्याख्या—सुदामा से अच्छी तरह मिल-भेंट कर श्रीकृष्ण हाथ पकड़ कर उन्हें महल के भीतर ले गये, जहाँ श्रीकृष्ण के सिवा दूसरा कोई पुरुष नहीं

जा सकता था।

(४०) **शब्दार्थ**—मनिमंडित=जिसमें मणियाँ जड़ी हों। कनक=सोना। ता=तिस। पगधोवन को=पैर धोने के लिए।

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने सुदामा को मणि-जटित सोने की चौकी पर बैठाया और उनके पैर धोने के लिए स्वयं ही एक परांत में पानी भर कर रखा।

(४) **शब्दार्थ**—राज-रमनि=रानियाँ (राज-रमणि)। सोलह-सहस=सोलह हजार। सह-सेवकन=दास-दासियों के साथ। पटरानी=प्रधान रानी। चितै=देखकर। हेत=प्रेम। स-मीत=सखियों के साथ।

व्याख्या—यह देख कर आठों पटरानियाँ, सोलह हजार रानियाँ और सहायिकाएँ चकित हो गयीं।

(४२) **शब्दार्थ**—जिनके चरनन को सलिल=जिनके चरणों का जल। हरत जगत-संताप=संसार का दुःख दूर करता है। (यहाँ संकेत इस बात की ओर है कि गंगा का उद्गम विष्णु के चरणों से हुआ है।) तें=वे। आप=स्वयं ही।

व्याख्या—(कवि कहता है) जिन परब्रह्म—श्रीकृष्ण के चरणों का जल (गंगाजी) संसार के कष्टों को दूर करता है, वे स्वयं आज सुदामा ब्राह्मण के चरण धो रहे हैं।

(४३) **शब्दार्थ**—बेहाल=बुरी दशा, दुखी। बेवाइन=बिवाई, पैर की एड़ियाँ फटने की स्थिति। कंटकजाल=काँटों का छत्ता, काँटों का समूह। पुनि=फिर। जोए=देखे। इतै=यहाँ। कितै=कहाँ। कितै दिन खोए=कहाँ इतने दिन बिताये। करुना करिकै=करुणा से अभिभूत हो कर। करुनानिधि=करुणा के सागर, कृष्ण। पग=पैर।

व्याख्या—(धोने के लिए जब श्रीकृष्ण ने सुदामा के पैर उठाये तो उन्होंने देखा कि) बिवाइयों से सुदामा के पैरों के तलुए फटे हुए हैं और उनमें सैकड़ों काँटे चुभे हुए हैं। (पैरों की इस दुर्दशा से श्रीकृष्ण ने सुदामा के कष्टों का अनुमान कर लिया)। उन्होंने रो कर कहा—हे मित्र, तुमने बहुत दुःख पाया है। न मालूम तुम कहाँ भटकते रहे। तुम यहाँ क्यों नहीं आये? सुदामा की दीनदशा

देख कर करुणा से अभिभूत हो श्रीकृष्ण इतना रोये कि परात का पानी छूने की आवश्यकता ही न पड़ी, आँखों से बही हुई जल-धारा से ही उन्होंने सुदामा के पैर धो डाले।

विशेष—यह सवैया 'सुदामाचरित' के मार्मिक छन्दों में से एक है। इसमें सुदामा के दारिद्रय का हृदय-विदारक चित्रण और श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री का मर्म-स्पर्शी निरूपण हुआ है। अनुप्रास अलंकार का अति स्वाभाविक प्रयोग भावों को प्रभावशाली बनाने में बड़ा उपयोगी रहा है।

(४४) **शब्दार्थ**—पट-पीत=पीत पट, पीताम्बर, पीला वस्त्र। सतिभामा =सत्यभामा (श्रीकृष्ण की एक पटरानी)।

व्याख्या—सुदामा के पैर धो कर श्रीकृष्ण ने अपने पीताम्बर से उन्हें पोंछा और सत्यभामा से कहा—तुम जा कर इनके लिए भोजन तैयार करो।

(४५) **शब्दार्थ**—तंदुल=चावल। तिय=स्त्री। दीन्हें हते=दिये थे। आगे धरियौ जाय=जा कर भेंटना। बिभव=वैभव, ऐश्वर्य।

व्याख्या—इस प्रकार जब सुदामा निश्चिंत हुए तो उन्हें याद आया कि उनकी पत्नी ने श्रीकृष्ण को भेंट देने के लिए चावल दिये थे। पर यहाँ का राजसी ठाट-बाट देख कर उन्हें वह भेंट देने में संकोच हो रहा था।

(४६) **शब्दार्थ**—रीति=ढंग, पद्धति, मनोदशा। सुहृद=मित्र। प्रगट= प्रकट, प्रत्यक्ष।

व्याख्या—भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्यामी है। भक्त सुदामा के मन का संकोच उन्होंने जान लिया। अपने मित्र सुदामा ब्राह्मण से प्रत्यक्ष रूप में उन्होंने इस प्रकार अपना प्रेम प्रकट किया—

(४७) **शब्दार्थ**—कछु=कुछ। काहे न देत=क्यों नहीं देते? पोटरी= गठरी। चाँपि रहे=दबा रहे हो, छिपाये हो। काँख=बगल। हेत=हेतु, कारण।

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने विनोद करते हुए कहा, भाभी ने मेरे लिए जो कुछ भेंट दी है उसे देते क्यों नहीं? पोटली को काँख में क्यों दबा रखा है?

(४८) **शब्दार्थ**—आगे=पहले। गुरु-मातु=गुरु की पत्नी। ते=तिसको।

चाबि=खा गये। 'चना गुरु-मातु'''नहिं दीने=यहाँ श्रीकृष्ण और सुदामा के विद्यार्थी-जीवन की एक घटना की ओर संकेत है। दोनों सन्दीपन गुरु के पास पढ़ते थे। एक दिन गुरु-पत्नी ने दोनों को लकड़ी लाने के लिए जंगल भेजा। सुदामा को उन्होंने कुछ चने दे कर कहा कि भूख लगने पर तुम और कृष्ण दोनों चबा लेना। सयोगवश वन में आँधी-पानी का सामना करना पड़ा। कृष्ण-सुदामा भटक कर एक-दूसरे से अलग हो गये। भूख लगने पर सुदामा ने चने चबा लिये, पर कृष्ण को यह न बतलाया कि गुरु-पत्नी ने चने दिये थे। लौटने पर कृष्ण को यह बात मालूम हुई। बानि=आदत। प्रबीने=प्रवीण, चतुर। सुधा-रस-भीने=अमृत-रस से वेष्टित। अजौ=आज भी। तैसेई''' कीनै=भाभी के इन चावलों के साथ वैसे ही करोगे क्या?

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने हँस कर कहा, चोरी करने में तुम चतुर हो। (याद है न) एक बार गुरु-माता ने चने दिये थे और तुम हमें न दे कर सब चट कर गये थे। (और आज भी तुम वही कर रहे हो) भाभी के दिये हुए, सुधा रस से भीगे, चावलों की पोटली बगल में छिपाये बैठे हो। (देखता हूँ) तुम्हारी चोरी की पुरानी आदत नहीं गयी।

विशेष—इस सवैया छन्द में हास्य-व्यंग्य की छटा दर्शनीय है। श्रीकृष्ण अपने बालसखा की झेंप दूर करने के लिए बाल्यकाल की उस घटना की ओर संकेत करते हैं, जिससे उसका उत्साह बढ़े। सुदामा ने गुरु-माता द्वारा दिए चने सारे स्वयं खा लिए और श्रीकृष्ण को उनका हिस्सा नहीं दिया। इस घटना की याद दिलाकर वे उन चावलों को माँगते हैं, जिन्हें सुदामा संकोचवश देने में सकुचा रहा था। इससे श्रीकृष्ण की आत्मीयता, आदर्श-मैत्री तथा विनोदी-प्रकृति का आभास मिलता है।

(४६) **शब्दार्थ**—संकुचत=संकोच करते हुए। चितवत=देखते हुए। जीरन=जीर्ण, पुराना। तेहि ठौर=उसी जगह। बिखरि गए=छितरा गये, फैल गये।

व्याख्या—(श्रीकृष्ण द्वारा पिछली चोरी का भेद खोला जाता देख कर) सुदामा ने बड़े संकोच से, श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए पोटली को खोलना शुरू

किया। किन्तु कपड़ा इतना पुराना था कि गाँठ खोलते समय फट गया और चावल बिखर गये।

विशेष—इस दोहा छन्द में सुदामा के दारिद्र्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। 'जीरन पट फटि छुटि परे' के द्वारा कवि सुदामा की दीन-हीन दशा का एक और हृदय-विदारक बिम्ब प्रस्तुत करता है।

(५०) **शब्दार्थ**—चबत—चबाने के साथ ही। चबाउ—कानाफूसी करना, गुप्त मंत्रणा। चतुरानन— ब्रह्मा। त्रिपुरारि—शिव।

व्याख्या—शीघ्र ही कृष्ण ने (बिखरे हुए चावलों को समेट कर) एक अंजुलि भर चावल मुँह में डाल लिया। श्रीकृष्ण को इस प्रकार चावल चबाते देखकर ब्रह्मा और शिव आपस में तरह-तरह की बातें करने लगे।

(५१) **शब्दार्थ**—कमला—लक्ष्मी। मोसो—मुझसे। कहा—क्या। मन औंको—मन उकता गया; मन फिर गया। मोसो···औंको ?—क्या मुझसे भगवान का मन फिर गया ? रिद्धि—ऋद्धि; समृद्धि। सिद्धि—सफलता। रिद्धि-सिद्धि—समृद्धि और सफ़लता देने वाली देवियां हैं। ये गणेशजी की पत्नी या अनुचरी हैं। निधि—कुबेर के रत्न - पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द कुन्द, नील और खर्व। बम्हना—ब्राह्मण। धौंको—न जाने कौन है ? झौंको—फाँका। वकसै जनि—कहीं दान न कर दें। कुबेर—धन के देवता, देवताओं के कोषाध्यक्ष, उत्तर दिशा के स्वामी।

व्याख्या—जब कृष्ण ने चावल की दूसरी फंकी ली तो लक्ष्मी काँप उठीं। वे मन में सोचने लगीं, क्या अब भगवान् का मन मुझसे फिर गया ? (क्यों वे मुझे इस गरीब ब्राह्मण को दे देना चाहते हैं)। ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ और निधियाँ भी काँप उठीं और सोचने लगीं कि यह ब्राह्मण कौन है (जिसे भगवान् सब कुछ दे देना चाहते हैं)। इन्द्र को भय होने लगा कि भगवान् गरीब ब्राह्मण पर प्रसन्न होकर उसे इन्द्रासन ही न दे दें। सोने का सुमेरु डर गया कि भगवान् कहीं उसे ही दान में न दे दें। धनाधीश कुबेर चौंक पड़े कि आज क्या भगवान् खजाना ही खाली कर देंगे।

विशेष—इस सवैया छन्द में अद्भुत रस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

श्रीकृष्ण जब अपने मित्र सुदामा की स्नेह-भेंट चावलों को खाने लगते हैं तो लक्ष्मी, ऋद्धि, सिद्धि, इन्द्र, कुबेर आदि सभी चिंतित हो उठते हैं। उनकी चिंता का कवि ने अति स्वाभाविक निरूपण किया है। अतिशयोक्ति अलंकार के प्रयोग से भावोत्कर्ष में अच्छी सहायता मिली है।

(५२) **शब्दार्थ**— हूल = घबड़ाहट; पीड़ा। हियरा में = हृदय में। कानन = कानों में। टेर = पुकार, आवाज। भेंटत सुदामैं···आघात ही—(१) सुदामा ने भेंटस्वरूप जो चावल दिया उसे चाव से खाते हुए कृष्ण नहीं अघाते हैं। (२) कृष्ण सुदामा से मिलते हैं और चावल चबा कर अघाते नहीं हैं। सोर भयौ = हल्ला मच गया। ठाढ़ी = खड़ी-खड़ी। थरहरैं = काँपती हैं। तहीं = उसी जगह। नाक लोक—स्वर्ग लोक। नाग लोक—पाताल लोक। ओक-ओक—घर घर। थोक-थोक = समूह के समूह, टोली की टोली। गातहीं = शरीर। हालो परो = हल्ला मच गया। थोकन में = झुंड और समूह में। लालो परो लोकन मैं = लोकों में त्रास छा गया; अकाल पड़ गया। चालो परो चक्रन में—(१) जन्म के दरिद्र सुदामा का आज भाग्य पलट रहा है; वह रंक से राजा होने जा रहा है। इससे कालचक्र भी चलायमान हो गया। (२) चारों ओर उथल-पुथल मच गई।

व्याख्या—कानों-कानों में यह बात फैल गई कि श्रीकृष्ण ने सुदामा जैसे दीन का बहुत आदर-सत्कार किया और वे अब उससे भेंटस्वरूप मिले। साधारण चावल ऐसी रुचि से चबा रहे हैं कि अघाते ही नहीं। सबके हृदय में एक घबराहट-सी हुई। नरोत्तमदास कहते हैं कि समृद्धि और सफलता की अधिष्ठात्री ऋद्धि-सिद्धियों में कोलहल सा मच गया। (अपने पति भगवान् की यह अप्रत्याशित विरक्ति देखकर) लक्ष्मीजी वहीं खड़ी-खड़ी काँपने लगीं। स्वर्ग में पाताल में, घर-घर में, झुण्ड-झुण्ड में इस अनहोनी घटना की खबर फैल गई। इस संवाद से सबके मुख सूख गए और सब काँपने लगे। श्रीकृष्ण के चावल चबाते ही देव-समूह में हल्ला मच गया कि अब क्या होगा ? लोक-लोक में अकाल पड़ गया (क्योंकि अधिकांश समृद्धि भगवान् ने सुदामा को दे दी)। श्रीकृष्ण की यह लीला देखकर कालचक्र भी विचलित हो उठा। (जिस सुदामा के भाग्य में

इतनी दरिद्रता लिखी थी, वह दो मुट्ठी चावल खिलाकर आज अपार सम्पत्ति का मालिक होने जा रहा है, अतः अपनी परवशता पर काल का विचलित हो उठना स्वाभाविक ही है।)

विशेष—इस कवित्त में भावानुकूल भाषा का प्रयोग, कहावतों तथा अनुप्रासों का सौष्ठव भाव को प्रभावोत्पादक बनाने में अत्यन्त उपयोगी रहा है। इसमें भाव एवं कला का एक साथ सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

(५३) **शब्दार्थ**—भौन—भवन। पकवान—पूरी कचौड़ी आदि। निधि—खजाना। सुषमा—सुन्दरता। अभिलाषत – चाहते हैं। दाख—मुनक्का, अंगूर न चाखत— चखते तक नहीं। सिंधु छमा के—क्षमा के सागर, श्रीकृष्ण। सेर पावक—लगभग पाव भर। समा—साँवाँ; एक प्रकार का चावल। कंत रमा के=लक्ष्मी-पति; विष्णु; कृष्ण।

व्याख्या—(श्रीकृष्ण को सुदामा के साधारण चावलों को चबाते देखकर लोग आपस में कहने लगे) सौन्दर्य के भण्डार, श्रीकृष्ण के महल तरह-तरह की मिठाइयों और पकवानों से भरे पड़े हैं। साँझ-सवेरे उनके माता-पिता बड़े दुलार से उनसे मिठाई-पकवान खाने का आग्रह करते हैं। पर क्षमा के सागर श्रीकृष्ण अंगूर भी नहीं चखते। (कहने का तात्पर्य यह है कि मेवा-मिठाई में भी श्रीकृष्ण की रुचि नहीं।) प्रीति की रीति को क्या कहा जाय; एक दुखिया ब्राह्मण एक पाव साँवाँ जैसे मोटा चावल लाया है, (मेवा-मिठाई में भी रुचि नहीं लेने वाले) श्रीकृष्ण उन मोटे चावलों को बड़े प्रेम से बैठे चबा रहे हैं।

विशेष—इस सवैया छन्द में श्रीकृष्ण की आदर्श-मैत्री का निरूपण हुआ है। वे नाना प्रकार के पकवान छोड़कर मित्र के द्वारा भेंट किए गए चावल जिस प्रेम-भाव से चबाते हैं, उसमें मैत्री-आदर्श का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता हैं। विषम अलंकार का प्रयोग भी भावों को प्रभावोत्पादक बनाने में बड़ा उपयोगी रहा है।

(५४) **शब्दार्थ**—रुकुमिनि=रुक्मिणी कृष्ण की आठ पटरानियों में एक। अनचाह=अनिच्छा; उदासीनता।

व्याख्या—(दो मुट्ठी चावल खाने के बाद) श्रीकृष्ण ज्योंही तीसरी मुट्ठी

चावल लेने लगे तभी रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—आज आप धन-सम्पत्ति से इतना उदासीन क्यों हो गये हैं ?

(५५) **शब्दार्थ**—यह धौं कौन मिलाप=यह कैसा मिलन है ? यह कैसी मित्रता है ? करत सुदामा···सुदामा आप=सुदामा को अपने समान ऐश्वर्यवान बना रहे हैं और स्वयं सुदामा के समान कंगाल बन रहे हैं।

व्याख्या—(श्रीकृष्ण का हाथ रोक कर) रुक्मिणी ने उनके कान में कहा—भला, यह भी मिलने-भेंटने का कोई ढंग है कि आप सुदामा को अपने समान तीनों लोकों का स्वामी बना रहे हैं और स्वयं सुदामा के समान निर्धन बन रहे हैं।

विशेष—इस दोहे में महादानी श्रीकृष्ण के दीनबन्धु तथा मित्रवत्सल रूप का चित्रण हुआ है वे अपना सर्वस्व अपने मित्र को देकर स्वयं उसकी निर्धनता अपना लेने में गौरव अनुभव करते हैं।

(५६) **शब्दार्थ**—कौतुक=तमाशा; क्रीड़ा, विस्मयजनक प्रसंग। भई रसोई सिद्ध=भोजन तैयार हो गया।

व्याख्या—इसी विस्मयजनक प्रसंग के समय सेवकों ने आकर निवेदन किया—महाराज, भोजन तैयार है। चल कर भोजन कीजिए।

(५७) **शब्दार्थ**—मध्याह्न=दोपहर।

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने सुदामा के साथ स्नान किया, धुली-धुलाई धोती पहनी और दोपहर की संध्या की। फिर वे खाने के लिए चौके में जा बैठे।

(५८) **शब्दार्थ**—रूपे के=चाँदी के। रुचिर=सुन्दर। पायस=दूध में बनी खीर। सिता=चीनी; मिसरी। सरद=शरद्। सोंधो=सोंधा। पहिति=दाल। सुरभी=गाय। फूले-फूले फुलका=फूली-फूली रोटियां। प्रफुल्ल=खिला हुआ श्वेत कमल। दुति=द्युति; चमक; शोभा। फूले-फूले··· मंद की=फूली-फूली रोटियों के सामने खिले हुए श्वेत कमलों की शोभा भी मंद पड़ जाती हैं। व्यंजन=तरकारियाँ; विविध खाद्य पदार्थ। आछे कै=अच्छी तरह। जेंवाय=भोजन करा कर; खिला कर। पाछे तैं=पीछे से। पछियावरि=श्रीखण्ड; सिखरन—दही या मट्ठे में शक्कर डाल कर बनी वस्तु।

भोजन के पश्चात् मीठी वस्तु खाने से पाचन शक्ति ठीक रहती है। आनि= ला कर। कन्द =मिसरी।

व्याख्या—(श्रीकृष्ण और सुदामा जब खाने बैठे तब उन्हें) चाँदी की सुन्दर थाली में मिश्री सहित खीर परोसी गई, जो शरद् ऋतु के चन्द्रमा से भी अधिक स्वच्छ थी। दूसरी थाली में दाल-भात, गाय का सुगन्धित घी और फूले हुए फुलके परोसे गये। फूल-फूले फुलकों के सामने श्वेत कमलों की शोभा भी मंद पड़ गई। पापड़, मुँगौरी, बड़ा इत्यादि तरह-तरह के व्यंजन परोसे गए। भोजन के अन्त में श्रीखंड या सिखरन परोसी गई। श्रीकृष्ण ने अपने मित्र सुदामा को ऐसे प्रेम से भोजन कराया कि देवता भी वह प्रीति देखते ही रह गये।

विशेष—इस कवित्त में श्रीकृष्ण द्वारा मित्र सुदामा को दिये गये अपार आदर; सत्कार, अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों आदि का अति सुन्दर निरूपण हुआ है। प्रतीप अलंकार का सौष्ठव भी द्रष्टव्य है।

(५९) **शब्दार्थ** विधि=प्रकार। चित चल्यौ=इच्छा हुई। बनाव= वर्णन।

व्याख्या—इस तरह सात दिन सुदामाजी द्वारिका में रहे। प्रतिदिन उन्हें श्रीकृष्ण की ओर से अधिक सम्मान मिलता रहा। तब उन्हें घर वापस लौटने की इच्छा हुई। आगे उसका वर्णन सुनिये।

(६०) **शब्दार्थ**—दाहिने=दायीं ओर। चतुरानन=ब्रह्मा। सामुहें= सम्मुख सामने। महेस=महेश; शंकर। दुऔ=दोनों। कर=हाथ। सुरेस= इन्द्र। ऐतइ बीच=इसी बीच में। पायन=पांवों पर। आय=आ कर। विभौ=वैभव। वपुरो=बेचारा।

व्याख्या—(जाते समय श्रीकृष्ण ने सुदामा को सब कुछ दे दिया। परन्तु प्रत्यक्ष रूप में सुदामा को दान की सूचना न देकर उन्होंने एक स्वप्न में उन्हें सारे ऐश्वर्य की झलक-सी दिखा दी) जाते समय सुदामा ने स्वप्न में देखा,— ब्रह्मा उनकी दाहिनी ओर वेद पढ़ रहे हैं, सामने शंकर ध्यान लगाये हैं, बायीं ओर सब देवताओं के साथ इन्द्र हाथ जोड़े खड़े हैं और विविध ऐश्वर्य लिए

कुबेर उनके सामने प्रणत हैं। जन्म का दरिद्र ब्राह्मण अपने स्वप्न में इतना ऐश्वर्य देख कर चौंक पड़ा।

[अपने घर वापस लौटने पर सुदामा ने इस स्वप्न की चर्चा अपनी पत्नी से की है। वे कहते हैं—

"दिन-प्रति अधिक सनेह सों, सपन दिखायो मोंहि।
सो देख्यो परतच्छ ही, सपन न निसफल होंहि॥"]

विशेष—इस सवैया छन्द में श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप को सांकेतिक किया गया है। इसी से वे अपने भक्त सुदामा को एक असाधारण स्वप्न का दर्शन कराते हैं। उदात्त अलंकार का सौन्दर्य भावों के उत्कर्ष में पूर्ण सहयोग देता है।

(६१) **शब्दार्थ**—देनो हुतो=जो देना था। गाथ=गाथा; कथा; रहस्य। बेर=बेला; समय।

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने सुदामा को जो कुछ देना था सो दे दिया। (सुदामा ने उस ऐश्वर्य को स्वप्न में देखा भी।) परन्तु सुदामा इस रहस्य को नहीं समझ सके। चलते समय श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष रूप में उन्हें कुछ न दिया।

(६२) **शब्दार्थ**—पुनकनि—प्रसन्नता; रोमांच होना; उमंग; उत्साह। वह पुलकनि भाँति—श्रीकृष्ण का उत्साह और उमंग से उठ कर आदरपूर्वक ललक कर सुदामा से गले मिलना। भाँति—रीति। पठवनि—विदाई; भेजना। यह पुनकनि—और यह (बिना कुछ दिये) विदा करना।

व्याख्या—(चलते समय श्रीकृष्ण ने सुदामा को प्रत्यक्ष रूप में कुछ न दिया। यह सोच कर सुदामा को बड़ा पछतावा हुआ। रास्ते में वे सोचने लगे) श्रीकृष्ण का रहस्य कुछ समझ में नहीं आता। कहाँ तो प्रेम से अत्यन्त पुलकित होकर आतुरता तथा उमंग से उन्होंने मेरा स्वागत किया और कहाँ इस तरह खाली हाथ विदा कर दिया! (अगर अन्त में उन्हें मेरे साथ इतना निष्ठुर व्यवहार करना था तो उन्होंने पहले मेरे प्रति इतना प्रेम प्रदर्शित क्यों किया?)

(६३) **शब्दार्थ**—कर ओड़त फिरे=हाथ पसारे फिरे। तनक=थोड़ा। काज=लिये; कहा भयो···राज समाज=अब कृष्ण को राजपाट मिल गया तो

क्या हुआ ।

व्याख्या – (खाली हाथ लौटने से सुदामा का मन बहुत क्षुब्ध था। पर मन ही मन श्रीकृष्ण की आलोचना कर उन्होंने अपने आप को धीरज दिया। उन्होंने यह सोच कर अपने आप को धीरज दिया कि श्रीकृष्ण स्वभाव से ही क्षुद्र हैं। संसार में धन पा जाने से किसी की प्रवृति थोड़े ही में बदल जाती है।) ये वही कृष्ण हैं जो बाल्यावस्था में जरा सा दही के लिए घर-घर हाथ फैलाते फिरते थे। अब उन्हें राज-पाट मिल गया तो क्या हुआ, स्वभाव तो अभी वही है।

विशेष—इस दोहे में सुदामा का मन स्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

(६४) **शब्दार्थ**=हौं=मैं। आवत नाहीं हुतौ=आता नहीं था; आना चाहता था। वाही=उसी ने (स्त्री ने)। ठेलि=ठेल कर; जबरदस्ती। वाहीं पठ्यौ ठेलि=स्त्री ने बारबार ठेल कर यहाँ भेजा। धन=स्त्री । =धनधन-सम्पत्ति। जाइकै=जा कर सकेलि=समेट कर।

व्याख्या=(सुदामा स्त्री के कहने से ही श्रीकृष्ण के पास आये थे। जब श्रीकृष्ण ने चलते समय उन्हें कुछ न दिया तो स्त्री के प्रति भी झुँझला कर मन ही मन उन्होंने कहा···) मैं तो श्रीकृष्ण के पास आता ही नहीं था या आना ही नहीं चाहता था, मेरी स्त्री ने ही मुझे बार-बार ठेलकर यहाँ भेजा। अब मैं घर जाकर अपनी स्त्री से कहूँगा कि श्रीकृष्ण ने तेरे लिए गाड़ियों में भर-भर कर धन-सम्पत्ति भेजी है, इसे अच्छी तरह सँभाल कर रख।)

विशेष— इस दोहे सुदामा की अपनी झुंझलाहट, व्यंग्य-बाणों की वर्षा तथा यमक अलंकार का सौष्ठव विशेष रूप से देखा जा सकता है।

(६५) **शब्दार्थ**= बालापन=बचपन। साप=शाप। कहा··साप मैं शाप क्या दूँ। **जैसो**··**आप**=जैसा कृष्ण ने मुझे दिया, वैसा ही उन्हें भी मिले।

व्याख्या—(स्त्री पर अपनी झुँझलाहट उतारने के बाद सुदामा का ध्यान फिर श्रीकृष्ण की ओर गया। उन्होंने मन ही मन कहा—श्रीकृष्ण मेरे

बचपन के मित्र हैं, अतः मैं उन्हें शाप क्या दूं ? केवल इतना ही कहता हूँ, जैसा उन्होंने मुझे दिया, वैसा ही उन्हें भी मिले।

(६६) **शब्दार्थ**—नौ गुनधारी=नौ गुण धारण करने वाला; नौ तागे का जनेउ धारण करने वाला; ब्राह्मण सुदामा। छगुन=ब्राह्मणों के छः गुण अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह। तिगुना मध्ये—तीन गुणों—यजन, पठन, और दान वाले क्षत्रियों के बीच। जाय=जा कर। लायौ =लाया। चापल—(चापल्य)=चंचलता; विकलता। चौगुनी=काम, क्रोध, मद, लोभ इन चार लक्षणों वाला। ओंठों गुननि=ज्ञान के साधन—विवेक, वैराग्य; षट्-सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और सामाधान); मुमुक्षा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि।

विशेष—इस दोहे में सुदामा के खाली हाथ लौटने पर उनके मन के संताप, पश्चाताप तथा अहं का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक निरूपण हुआ है।

(६७) **शब्दार्थ**—और कहा कहिए=और क्या कहूँ। कंचन—सोना। **निपट**—एक दम। कठिन—कठोर। हृदय । मोको—मुझे। दाम—कौड़ी; छदाम।

व्याख्या=(सुदामा फिर मन में सोचने लगे—) और क्या कहूँ जहाँ सोने के ही महल हैं, उस द्वारिका के स्वामी श्रीकृष्ण का हृदय इतना कठोर है कि उन्होंने आते वक्त मुझ जैसे दरिद्र को एक छदाम भी नहीं दिया।

(६८) **शब्दार्थ**=रतनन=रत्नों से। लाग=दोष। लाग आपने भाग को =अपने भाग्य का ही दोष है। काको=किसको।

व्याख्या=(सुदामा सोचते हैं) श्रीकृष्ण के यहां न जाने कितने भंडार हैं जिनमें बहु-मूल्य रत्न भरे पड़े हैं (परन्तु उन्होंने मुझे कुछ भी नहीं दिया)। (अन्त में वे यह सोच कर अपने आप को सान्त्वना देते हैं कि) यह सब अपने भाग्य का दोष है, इसमें श्रीकृष्ण का क्या दोष है ? अर्थात् मेरा भाग्य ही खोटा है, मैं श्रीकृष्ण को क्या दोष दूं ?

(६९) **शब्दार्थ**—इमि=इस तरह; इस प्रकार। झखत=पछताते हुए; झुँझलाते हुए। पुन-तीर=गाँव के निकट। दीठि=नजर; दृष्टि। हय=घोड़ा।

गयन्द=हाथी। भीर=भीड़।

व्याख्या=इस प्रकार मन में सोचते और खिझलाते हुए सुदामा ज्योंहीं अपने गाँव के निकट आये एकाएक उनकी दृष्टि हाथी-घोड़ों की भीड़ पर गई।

(७०) **शब्दार्थ**=गयौ=चला गया। गौतम रिषि को नाउँ लै=गौतम ऋषि का नाम लेकर। यह विश्वास है कि अनजान जगह में गौतम ऋषि का नाम लेकर जाने से अनिष्ट नहीं होता। सुदामा ने अपने नगर को पहचाना नहीं। इसलिए गौतम ऋषि का नाम लेते हुए नगर में प्रविष्ट हुए।

व्याख्या—(सुदामा ने कृष्ण की भक्त-वत्सलता के प्रति व्यंग्य करते हुए मन ही मन कहा—) श्रीकृष्ण के दर्शन से मेरा यही दु:ख दूर हुआ कि मेरा अपना नगर भी मेरे हाथ से गया। (सुदामा ने अपने गाँव को पहचाना नहीं) अत:, गौतम ऋषि का नाम लेकर उन्होंने नगर में प्रवेश किया।

(७१) **शब्दार्थ**=गजबाजि=हाथी और घोड़े। घने=बहुत से। संभ्रम=सन्देह; भ्रम। मन संभ्रम छायौ=मन में सन्देह छा गया। कैधौं—भूलि के=रास्ता भूल कर कहीं और तो नहीं पहुँचा। द्वारिकै माहि=द्वारिका में ही, मनौं=मानो। झौन विलोकिवे को=अपना घर देखने के लिए। मन सोचव=मानो ललच रहा था। मँझायो=खोज डाला। पर…पायौ=पर अपनी झोपड़ी का कहीं पता न पाया।

व्याख्या—सुदामा ने देखा, राजमहलों और हाथी-घोड़ों का जैसा समूह द्वारिका में था वैसा ही इस नगर में भी है। अत: उनके मन में यह भ्रम हो गया कि कहीं रास्ता भूल कर वे फिर द्वारिका तो नहीं चले आये? अपना घर देखने के लिए उनका मन ललच रहा था। मन में तर्क-वितर्क करते हुए उन्होंने सारा गाँव छान डाला। सबसे पूछताछ भी की; पर उन्हें अपनी झोंपड़ी का कहीं पता न लगा।

विशेष—इस सवैया छन्द में सुदामा की भ्रमित मन: स्थिति का चित्रण हुआ है, जिसे प्रभावशाली बनाने में सन्देह अलंकार का सार्थक प्रयोग तथा है।

(७२) **शब्दार्थ**-देव-नगर=स्वर्ग, अमरावती। जच्छपुर=यक्षपुर; कुबेर का नगर(अलकापुरी)। भटको=भटक पड़ा। कित आय=कहाँ आ कर। कहा=

क्या। यहि=इस। संभ्रमहिं=भूल जायँ। अनैसे=खराब। द्विजदेव=ब्राह्मण देवता। लखौ द्विज देव नगर कै=देखिये, यह देवतास्वरूप ब्राह्मण (सुदामा) का नगर है। हरि-देव=श्रीकृष्ण। कै दियो है=कर दिया है; बना दिया है।

व्याख्या (जब बहुत खोजने पर भी सुदामा को अपनी झोपड़ी का पता न लगा तब उन्होंने उस नगर के निवासियों से झुँझला कर पूछा—) अरे भाई, यह तो बताओ कि यह कौन-सा नगर है; यह स्वर्ग है या अलकापुरी है? तुम लोग मुझे समझा कर क्यों नहीं कहते कि इस नगर का क्या नाम है? मैं भटक कर कहाँ आ गया हूँ? तुम कैसे नगरवासी हो कि भूले हुए पथिक को ठीक रास्ता नहीं बतलाते? जिस नगर में पथिक रास्ता भूल जायँ और कोई ठीक मार्ग न बताये, वहाँ के लोग तो भले नहीं समझे जाते।

सुदामा का यह आक्षेप सुन कर एक व्यक्ति ने कहा—यहाँ के लोग बुरे नहीं हैं। देखिये, यह देवतास्वरूप ब्राह्मण (सुदामा) का नगर है। श्रीकृष्ण ने कृपा करके इस नगर को देवनगर के समान सुन्दर वैभवपूर्ण बना दिया है।

विशेष—इस कुण्डलिया छन्द में भी सुदामा की भ्रमित मनः स्थिति का निरूपण हुआ है और इसमें भी सन्देह अलंकार का सौष्ठव द्रष्टव्य है।

(७३) **शब्दार्थ**—मन-मानिक=मणि-माणिक्य। जटित=जड़े हुए। सुबरन=स्वर्ण, सोना। भेंटे अकुलाय=आतुर हो कर मिल रहे हैं। छ्वै रह्यौ—छू रहे। बाँभनी—ब्राह्मणी; सुदामा की पत्नी। विविध बिधि=अनेक प्रकार के। जैहौं=जाऊँगा। हौं—मैं जैहौं हौं निकासौ=मैं निकाला जाऊँगा। सो तमासौ जग ज्वै रह्यौ=वह तमाशा संसार देख रहा है। तें—तरत—सुन्दर; से आकर्षक। ऐसी दशा···ह्वै रह्यौ—सुदामा के, भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से सुदामापुरी द्वारिकापुरी के समान सुन्दर हो रही है।

व्याख्या सुदामा के नगर का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वहाँ सुन्दर-सुन्दर महल थे जिनमें मणि और माणिक्य जड़े हुए थे। उन्हें देख कर ऐसा मालूम होता था मानो सोने का सूर्य प्रकाश दे रहा है। सुदामा को आते देख कर नगर के लोग दौड़ पड़े। लोग उत्सुकतापूर्वक उनसे मिले और पैर छू कर दण्डवत किया। (अब भी सुदामा को विश्वास न हुआ कि यह उनका ही

नगर है।) तरह-तरह के वस्त्राभूषणों से सजी हुई ब्राह्मणी* को देख कर उन्हें और भ्रम हो गया कि यह उनका नगर नहीं। वे घबड़ा गये और सोचने लगे, यहाँ से अब अवश्य मैं निकाला जाऊँगा, यह तमाशा भी लोग देखेंगे।

(सुदामा को क्या पता था कि) उनके श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से ही सुदामापुरी की कायापलट हो गयी और अब वह द्वारिकापुरी से भी अधिक सुन्दर हो गयी है।

विशेष—इस कवित्त में श्रीकृष्ण की दानशीलता के फलस्वरूप बने सुदामा के भव्य भवन का अति सुन्दर वर्णन हुआ है। वर्णनात्मक शैली सौष्ठव के साथ-साथ उदात्त एवं उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य भी द्रष्टव्य है।

(७४) **शब्दार्थ**—कनक-दंड=सोने की छड़ी। सबनि=सबने ले कर।

व्याख्या—(नगर-निवासियों ने एक महल के सामने सुदामा को ले जा कर खड़ा किया) जिसके द्वार पर सोने का दंड हाथ में लिए हुए द्वारपाल खड़ा था। उन लोगों ने सुदामा से कहा=यही आप का महल है।

(७५) **शब्दार्थ**—हँसत हौ=दिल्लगी करते हो। ह्वै करि परम प्रवीन=बहुत चालाक हो कर या अपने को बहुत चालाक समझ कर।

व्याख्या—(उस महल और द्वारपाल को देख कर सुदामा ने उन लोगों से कहा—) आप लोग अत्यन्त चतुर हो कर भी मुझ दीन ब्राह्मण के साथ दिल्लगी क्यों कर रहे हैं ? मुझे मेरी वह झोपड़ी दिखलाइये जहाँ मेरी दीन-

---

* कुछ लोगों के विचारानुसार ब्राह्मणी से यहाँ तात्पर्य सुदामा की पत्नी से है। परन्तु सुदामा की पत्नी को सुदामा के आने की खबर पीछे मिलती है, जैसा कि इस दोहे से स्पष्ट है—

"सुनत चली आनंदयुत, सब सखियान लै संग।
नूपुर किंकिनि, दुंदभी, मनहुँ काम चतुरंग॥"

यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि 'बाँभनी' शब्द यहाँ किसके लिए आया है। अगर 'बाँभनी' से तात्पर्य किसी ब्राह्मण की स्त्री से है तो सुदामा का, परस्त्री को आभूषणों से लदी देख कर घबड़ा जाना युक्तिसंगत नहीं मालूम होता।

दुखिया ब्राह्मणी रहती है।

(७६) **शब्दार्थ**—सो=से। तिन=उन्होंने। कहि पठवहु=कहला भेजो।

व्याख्या—नगर-निवासियों ने द्वारपाल से कहा—भीतर (सुदामा की पत्नी के पास) खबर भिजवा दो कि ब्राह्मण-देवता आ गये हैं। अपने पति का दर्शन कर सनाथ सो जाओ। (इसका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—भीतर यह खबर भिजवा दो, ब्राह्मणदेवता आ गये हैं कि ब्राह्मणी उनका दर्शन कर कृतकृत्य हो जायँ।)

(७७) **शब्दार्थ**—नूपुर=पैंजनी। किंकिनि—किंकिणी=करधनी; कमर-कस। दुँदभी=दुन्दुभी, नगाड़ा। मनहु काम चतुरंग=मानो कामदेव की चतुरंगिणी सेना। चतुरंगिनी=चार अंगों (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल) वाली सेना।

व्याख्या— ब्राह्मणी वह सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुई और अपनी सखियों के साथ पाजेब, करधनी की घंटिकाओं की ध्वनि करती हुई, नगाड़े के संगीत के बीच इस प्रकार द्वार की ओर चली मानो कामदेव की चतुरंगिणी सेना आ रही हो।

विशेष—इस दोहे में श्रीकृष्ण की अपार कृपा से धन-वैभव पाने वाली सुदामा-पत्नी की साज-सज्जा का अलंकृत वर्णन हुआ है और उत्प्रेक्षा अलंकार उस सौष्ठव की वृद्धि में सहायक है।

(७८) **शब्दार्थ**—कंत=पतिदेव। गेह=घर।

व्याख्या – ब्राह्मणी ने सुदामा से आ कर कहा—हे नाथ! यही अपना घर है। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार हमारी दरिद्रता का नाश करके तीकों लोकों में अपनी मैत्री-प्रेम को प्रकट किया है।

(७९) **शब्दार्थ**—जनि=मत। जनि कहौ=न कहो। सँभारि=सँभाल कर; सोच-विचार कर। इहैं=यहीं पर। कुटी मेरी हती=मेरी झोपड़ी थी। बापुरी=बेचारी।

व्याख्या—(सुदामा अपनी पत्नी को पहचान न सके। अपने सामने एक पटरानी को खड़ी देख कर और उसके द्वारा पति सम्बोधन सुन कर वे बहुत चकमकाये। उन्होंने कहा—) तुम सोच-समझ कर बोलो; मुझे अपना पति मत

कहो। (हाँ,) यहीं पर मेरी झोपड़ी थी जिसमें बेचारी मेरी दुखिया पत्नी रहती थी।

(८०) **शब्दार्थ**—तिहारियै=आपकी ही; तुम्हारी ही। सुधि सँभारिए= होश कीजिये; याद कीजिये। प्रभुता=प्रभुत्व। श्री भगवंत=श्रीकृष्ण।

व्याख्या (पति का शंका दूर करने के लिए सुदामा की पत्नी ने कहा—) हे नाथ! होश सँभालिये, जरा ध्यान से देखिये, मैं आपकी ही स्त्री हूँ। यह सब धन-सम्पत्ति और सुन्दरता भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त हुई है।

(८१) **शब्दार्थ**—परी हुती=पड़ी हुई थी। तामैं=उसी में। दुःख काटौं =दुःख के दिन बिताते थे। हेम-धाम=सोने का घर। जेवर जराऊ—जड़ाऊ गहने। साजे=पहने। छूछी=खाली; बिना गहनों की। छाम=क्षीण। सारी-जरतारी=साड़ी जिस पर ज़री का काम किया हुआ हो। कारी=काली। कामरी=कम्बल। पड़ाइन=पड़ियाइन; ब्राह्मणी। तिहारी अनुहार=तुम्हारे समान रूप वाली। बिपदा-सताई=दुःख की मारी। पामरी=अभागिन।

व्याख्या—(अभी भी सुदामा को विश्वास न हुआ कि यह स्त्री मेरी पत्नी है और यह महल मेरा अपना घर हे। उन्होंने कहा—) यहीं पर मेरी टूटी-फूटी झोपड़ी थी। उसी में मेरी पत्नी अपने दुःख के दिन व्यतीत करती थी। उस झोपड़ी के स्थान पर ये सोने के महल कैसे आ गये? (या, उसके रहने के सोने के महल कहाँ थे?) तुम्हारा प्रत्येक अंग जड़ाऊ गहनों से सुशोभित है और इतनी सखियाँ तुम्हारे साथ हैं। परन्तु मेरी ब्राह्मणी वह ब्राह्मणी दुबली-पतली और अकेली थी; उसके शरीर पर कोई गहना न था। तुम ज़री के काम की साड़ी और किनारेदार रेशमी दुपट्टा पहने हुए हो, परन्तु मेरी ब्राह्मणी के पास तो ओढ़ने के लिए सिर्फ़ एक काली कामरिया थी। (हाँ,) तुम्हारी ओर देख कर मैं इतना तो कह सकता हूँ कि मेरी वह ब्राह्मणी तुम्हारी ही सूरत-शक्ल की थी। पर यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि जन्म भर दुःख सहने वाली बेचारी ब्राह्मणी को कुछ दिनों के अन्दर ही इतना धन-ऐश्वर्य कहाँ से मिल गया? (अन्तिम पंक्ति का अर्थ, कुछ लोग इस प्रकार लगाते हैं—अपनी विपदा की सतायी हुई दुखिया ब्राह्मणी को मैं कहाँ पाऊँगा?)

विशेष—इस कवित्त में सुदामा की हैरानी, दुविधा आदि का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है। अनुप्रास अलंकार का सौष्ठव भी द्रष्टव्य है।

(८२) **शब्दार्थ**—मंजु=सुन्दर। भायन सों=भावों से। तिहारोई=तुम्हारी ही। हरौ=दूर कीजिये। श्रम=थकावट। भूरि=बहुत। दारिद गमायो=दरिद्रता मिटायी। गह्यौ करु हैं=हाथ पकड़ती है। अविनासी=अविनाशी=अमर। पूरन-प्रकाशी=पूर्ण ज्योतिर्मय। बरु=श्रेष्ठ।

व्याख्या—सुदामा की पत्नी ने खड़ी होकर बड़ी कोमलता से कहा—हे स्वामी! मैं आपके चरण छूकर कहती हूं कि यह आपका ही घर है। आप बहुत दूर से आये हैं, द्वारिका जाने में आपने बड़ा भारी कष्ट उठाया हैं। श्रीकृष्ण की कृपा से हमारी दरिद्रता दूर हो गयी है। आइये, मैं अपनी सेवा से आपकी थकावट दूर कर दूँ। (सुदामा को इस प्रकार समझाते हुए स्त्री ने उनका हाथ पकड़ लिया। सुदामा को अपनी बातों पर पूरा विश्वास न करते देख वह उन्हें फिर समझाती है—) हे नाथ! सोलहों कलाओं से पूर्ण श्रीकृष्ण, जिनका कभी नाश नहीं होता (जो ईश्वर के अवतार हैं) उन्होंने ही (मित्रता निभाने के लिए) ऋद्धि-सिद्धियों को आपकी दासी बना दिया है, करोड़ों कामधेनु के साथ अपार सम्पत्ति और सब इच्छाओं को पूरा करने वाला कल्पवृक्ष भी उन्होंने आपको दिया है। आप घर चलिए, भ्रम को त्यागिये और भगवान ने जो कुछ दिया है उसे ग्रहण कीजिए।

विशेष—इस कवित्त में सुदामा-पत्नी अपने अपार वैभव का रहस्य प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप की ओर अपने पति का ध्यान आकृष्ट करती है।

(८३) **शब्दार्थ**—मुदित=प्रसन्न। अन्हवायो=स्नान करवाया। उबटि=उबटन लगा कर। सुचि=शुचि- पवित्र।

व्याख्या—इस तरह पति को समझा-बुझा कर ब्राह्मणी उन्हें महल में ले गयी और शीघ्र ही उसने उनके शरीर में पवित्र और सुगंधित उबटन मल-मल कर उन्हें स्नान कराया।

(८४) **शब्दार्थ**- अंबर=वस्त्र। अंबर रचे=वस्त्र पहनाये।

व्याख्या—इसके बाद पति को सिंहासन पर बैठा कर ब्राह्मणी ने बड़े आदर-प्रेम से उनकी पूजा की; तब उन्हें पवित्र और सुगंधित वस्त्र तथा सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहनाये।

(८५) **शब्दार्थ**—सीतल=शीतल। अँचवायकै=आचमन करा कर। छबि=सुन्दर। रबिप्रभा=सूर्य की कान्ति।

व्याख्या—सुदामा को वस्त्र-आभूषण पहनाने के बाद ब्राह्मणी ने ठंडे जल से उनके हाथ-पाँव धो कर उन्हें बैठाया। फिर पानों से भर कर पानदान उनके पास ले जा कर रखा। वह पानदान अत्यन्त स्वच्छ और चमकीला था।

विशेष—इस दोहे में उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(८६) **शब्दार्थ**—रम्भा=देवलोक की अप्सरा, चिरयौवना, चिर-सुन्दरी। रंभादिक=रम्भा आदि; मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोतमा और मंजुघोषा—ये छः स्वर्ग की प्रधान अप्सराएँ हैं। बयारि=वायु।

व्याख्या—रम्भा आदि अप्सराएँ चारों ओर से सुदामा पर चमर डुलाने लगीं और उनकी पतिव्रता स्त्री पंखा झलने लगी।

(८७) **शब्दार्थ**—स्वेत-छत्र=उजला चँदोवा। राजत=सुन्दर लगते हैं। सक्र=शक्र—इन्द्र। बाहन=सवारी। तुरँग=घोड़ा। बर=सुन्दर। अरु=और। शुभ=मंगलमय। जान=यान—सवारी; रथ।

व्याख्या—उजले चँदोवा के नीचे बैठे हुए सुदामा इन्द्र के समान सुशोभित हो रहे थे। सुन्दर हाथी, घोड़े और रथ के अतिरिक्त और भी कई तरह की सुखद सवारियाँ उनके पास थीं।

(८८) **शब्दार्थ**—जानि परी=जान पड़ता है। गुरु-बन्धु=गुरु-भाई; सहपाठी। हरिलीन्हीं=दूर कर दी। पीर=दुःख।

व्याख्या—(जान-पड़ता है कि) गुरुभाई श्रीकृष्ण ने कल्पवृक्ष-सहित कामधेनु दे कर सुदामा के सब कष्ट हर लिये।

(८९) **शब्दार्थ**—सुधा=अमृत। बाम=स्त्री। बिनीत=विनीत, नम्र। मृदु=कोमल; मीठे। मन काम=मन की अभिलाषा।

व्याख्या—सुदामा की पत्नी ने विविध प्रकार से उनकी सेवा की और उन्हें

अमृत (या अमृत-तुल्य जल) पिलाया। इसके बाद उसने बड़ी नम्रता से मीठे वचन कहे—अब मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गयीं।

(९०) **शब्दार्थ**—लै=ले कर। आयसु=आज्ञा। तिय=स्त्री। न्हाइ करि=स्नान करके। गौरि=गौरी—पार्वती। सोहाग-हित=सुहाग अचल रखने के लिए। हित=हेतु; लिए।

व्याख्या—पति की आज्ञा ले कर सुदामा-पत्नी ने स्नान किया और पवित्र सुगंध शरीर में लगा कर उसने बड़े प्रेम से अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए पार्वती की पूजा की।

(९१) **शब्दार्थ**—षटरस=मिष्ट, लवण, कटु, कषाय, अम्ल और तिक्त। रचाय=सजा कर।

व्याख्या—सुदामा की पत्नी ने छहो रसों से युक्त चारों प्रकार के भोजन बनाये और सोने की थाली में उन्हें सजा कर रखा।

(९२) **शब्दार्थ**—डारि कै=बिछा कर। सुजानि=चतुर। भाजन-कनक=सोने का पात्र। आनि=ला कर।

व्याख्या—चतुर दासी ने भोजन तैयार देख कर चंदन की चौकी बिछायी और रत्नों से जड़े हुए सोने के एक पात्र में गंगाजल भर कर रख दिया।

(९३) **शब्दार्थ**—कूजा=जल रखने का छोटा पात्र; लुटिया। रच्छाधान=ढक्कन। जल-प्रकाश=स्वच्छ जल। भर-पूरि=भर कर।

व्याख्या—(फिर) दासी ने ढक्कन सहित (रत्नों से जड़ा हुआ) जलपात्र ला कर रखा, जिसमें पवित्र, सुगंधित एवं स्वच्छ जल पूरा भरा हुआ था।

(९४) **शब्दार्थ**—काम=लिए। मरकत मनि=नीलम। छविधाम - बहुत सुन्दर।

व्याख्या—(फिर उसने) सुदामाजी के बैठने के लिए रत्न-जड़ित सोने का पीढ़ा रखा और कुछ दूर पर मणियों से जड़ी हुई बहुत सुन्दर चौकी रखी।

(९५) **शब्दार्थ**—पाथ = पानी; जल। पादुका=खड़ाऊँ। सलिल=जल।

व्याख्या—सुदामाजी के पैर धोने के लिए चौकी मँगा कर रखी गयी तथा जल के साथ, उनके पहनने को मणियों से जड़ी हुई खड़ाऊँ रखी गयी।

(९६) **शब्दार्थ**—मृदु भाखि=मीठे शब्दों में; मधुर शब्द वाली। साखि= साक्षी। कृष्ण को साक्षी करके सुदामाजी ने धन्य-धन्य कहा।

व्याख्या—दासी ने आ कर बड़े मीठे शब्दों में कहा—भोजन करने चलिये। (इस समय सुदामा के मन में यह विचार आया कि यह सब धन-ऐश्वर्य श्रीकृष्ण की कृपा का ही फल है।) अतः, यह कह कर कि 'हे श्रीकृष्ण ! आप धन्य हैं' वे भोजन करने के लिए उठे।

(९७) **शब्दार्थ**—वसन=वस्त्र; कपड़े। सरोज=कमल। जनु=मानो। तनु धरे=शरीर धारण किये। मनोज=कामदेव।

व्याख्या—वस्त्र उतार कर चरण-कमल धोने के लिए सुदामाजी जब चौकी पर गये, उस समय वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो साक्षात् कामदेव शरीर धारण कर उपस्थित हो गये हों।

विशेष—इस दोहे में धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न सुदामा के सौन्दर्य का चित्रण हुआ है। रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

(९८) **शब्दार्थ**—रति=कामदेव की स्त्री। छवि आगरी=सुन्दरता की खान।

व्याख्या— (पैर धो कर) सुदामाजी खड़ाऊँ पहन कर भोजन करने के लिए गये और पीढ़े पर जा बैठे। उस समय रति से भी अधिक सुन्दर उनकी स्त्री उनके पास आ मुस्करा कर हँसने लगी।

विशेष—इस दोहे में अपार धन-वैभव मिल जाने के उपरांत, सुदामा-पत्नी के सौन्दर्य का चित्रण हुआ है। व्यतिरेक अलंकार के प्रयोग द्वारा कवि ने उसे कामदेव की पत्नी से भी अधिक सुन्दर बताया है।

(९९) **शब्दार्थ**—व्यंजन चारि प्रकार=चार प्रकार के भोजन—चर्व्य, चूस्य, लेह्य और पेय। जोरी=एकत्र की। पछिऔरी=भोजन के बाद दिया जाने वाला पेय; शिखरन आदि।

व्याख्या—अनेक प्रकार के भोजन, चारों प्रकार के व्यंजन और अंत में खायी जाने वाली पछिऔरी सुदामाजी के सामने रखी गयी। कवि कहता है कि उनके भोजन का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

(१००) **शब्दार्थ**– हरिहि समपौं=भगवान् को समर्पित करके भोग लगाये। नाद=शब्द। मंद=धीरे से। त्यों=वैसे ही।

व्याख्या—सब कुछ परोसे जाने पर उनकी पत्नी ने मुस्करा कर कहा—अब भगवान् को समर्पित करके भोग लगाइए। यह सुन कर सुदामा ने घंटी बजा भगवान् का नाम ले कर उन्हें भोजन समर्पित किया।

(१०१) **शब्दार्थ**—अगिन जिमाय=अग्नि में आहुति दे कर। बिधान=विधान– नियम। बैस्व देव करि नेम बलि काढ़ी=नियमपूर्वक विश्वदेव अर्थात् गो, काक और श्वान को कौर निकाल कर। करति पवन=पंखा झलती है।

व्याख्या—इसके बाद नियमपूर्वक अग्निहोत्र कर तथा गो, काग और श्वान को कौर निकाल कर सुदामाजी ने भोजन करना आरम्भ किया। उनकी पत्नी (पास ही बैठ कर) प्रेम से पखा झलने लगी।

(१०२) **शब्दार्थ**—रुचि=इच्छा। अबै=अभी। सोय=वही।

व्याख्या—सुदामा की पत्नी बार-बार पूछती है—जो चीजें आपको अच्छी लगती हैं वे और लीजिये। श्रीकृष्ण की कृपा से सब चीजें भरी हैं, आप जो कुछ माँगेंगे उसे मैं अभी ला कर परोस दूँगी।

(१०३) **शब्दार्थ**—जेइँ चुके=भोजन कर चुके। अचवन लगे=मुँह-हाथ धोने लगे। पलका=पलग। बुनो सुरेसम-दाम=सुन्दर बहुमूल्य रेशम से बुना हुआ।

व्याख्या—भोजन और आचमन करने के बाद सुदामाजी रेशम की डोरी से बिने हुए और रत्नों से जड़े हुए सोने के पलंग पर विश्राम करने गये।

(१०४) **शब्दार्थ**—ललित=सुन्दर। बिरचिकै=सजा कर। पाँयत=पैर की तरफ। पाँयके कसिकै डोरि=पायताने की डोरियों को कस कर। अतर=इत्र। बोरि=बसा कर; भिगो कर।

व्याख्या—चतुर सेवकों ने पलंग पर सुन्दर बिछौने बिछा दिये, पलंग की डोरी कस दी और इत्र से बिछौने को सुवासित कर दिया।

(१०५) **शब्दार्थ**— नेरे=निकट। बीरी=पान का बीरा। छबि-धाम=सुन्दर। पौढ़न लगे=लेटने लगे।

व्याख्या—(उन्होंने) पलंग के पास ही पान बीड़ों से भरा हुआ सुन्दर पानदान रख दिया। तब सुदामाजी पैर धो कर विश्राम करने के लिए लेट गये।

(१०६) **शब्दार्थ**—बीजना=पंखा। सेवत पद चारु=कोई सुन्दर पाँवों को दबाता। गजमोतिन=गजमुक्ता। हारु=हार; माला।

व्याख्या—कोई दासी चँवर डुलाने लगी, कोई पंखा झलने लगी। सेवक उनके चरण दबाने लगे। सब दास-दासियाँ सुन्दर आभूषणों से सजे हुए थे और गजमुक्ताओं के हार पहने हुए थे।

(१०७) **शब्दार्थ**—पिय=पति। पै=पास। किमि=किस प्रकार। एहि भाँति = इस रूप में।

व्याख्या—(सुदामा को विश्राम करते हुए देख कर) उनकी पत्नी श्रृंगार करके, पान खा कर मुस्कुराती हुई उनके पास आयी और उसने पूछा – अब मुझे आरम्भ से वह कथा सुनाइये कि किस प्रकार श्रीकृष्ण ने हमको इतनी सम्पत्ति दी।

(१०८) **शब्दार्थ**—आदिते=शुरू से। जिमि=जैसे।

व्याख्या—सुदामा ने शुरू से सब कथा सुनाना आरम्भ किया। उन्होंने बतलाया कि इस तरह रास्ता चलते-चलते उनके पैर थक गये और वो सो गये। फिर बतलाया कि किस तरह सोयी हुई दशा में ही श्रीकृष्ण ने उन्हें गोमती के किनारे पहुँचा दिया।

(१०९) **शब्दार्थ**—बखान=वर्णन; बड़ाई करते हुए वर्णन करना। मुख लाख सों=लाख मुख से भी। आन=आ कर।

व्याख्या—जिस प्रकार श्रीकृष्ण के द्वार पर वे पहुँचे, उस कथा का भी उन्होंने वर्णन किया। और, तब कहा कि श्रीकृष्ण जिस प्रकार आकर उद्वेग और उमंग से उनसे मिले उसका वर्णन एक मुँह से क्या लाखों मुँहों से भी नहीं किया जा सकता है।

(११०) **शब्दार्थ**—रमा-निवास=श्रीकृष्ण ; जिनके हृदय में लक्ष्मी का निवास है।

व्याख्या—(सुदामा ने आगे कहा—) श्रीकृष्ण हाथ पकड़ कर मुझे अन्तः-पुर में ले गये और स्वयं ही मेरे पैर धोने लगे।

(१११) **शब्दार्थ**—नयनन तें=आँखों से। बारि चल्यो=आँसू बहने लगे।

व्याख्या—(सुदामा ने कहा—) श्रीकृष्ण ने जब धोने के लिए मेरे पैर उठाये तो मेरे पैरों की दशा देख कर उनकी आँखों से जो जलधारा बही उसी से मेरे पैर धुल गये। यह दृश्य देख कर वहाँ उपस्थित सभी नर-नारी चकित हो गये।

(११२) **शब्दार्थ**—बहुरि=फिर। मेटे=दूर किया। भ्रम=सन्देह, संकोच। सन्ताप=दुःख।

व्याख्या—इसके बाद सुदामा ने वे बातें कहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने किस प्रकार स्वयं चावल लेकर खाये और किस प्रकार उन्हें अपने गले से लगा कर उनके सारे सन्देहों (संकोचों) और दुःखों को दूर कर दिया।

(११३) **शब्दार्थ**—जेवनार=भोजन की व्यवस्था। पाँति=कतार।

व्याख्या—तब सुदामा ने श्रीकृष्ण के यहाँ के जेवनार का वर्णन करते हुए कहा, जो-जो व्यंजन मैंने वहाँ खाये उन सबका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ; अर्थात् उन सबका वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।

(११४) **शब्दार्थ**—सपन=स्वप्न। परतच्छ=प्रत्यक्ष। निसफल=बेकार।

व्याख्या—(फिर उन्होंने कहा—) जितने दिन मैं वहाँ रहा, श्रीकृष्ण ने मुझे नित्यप्रति अत्यन्त प्रेम से रख कर धन और वैभव का स्वप्न दिखलाया। मैं उस स्वप्न को यहाँ प्रत्यक्ष देख रहा हूँ अर्थात् मेरे स्वप्न सत्य हो गये। अब मुझे विश्वास हो गया कि सपने झूठे नहीं होते।

(११५) **शब्दार्थ**— कह्यो आयनो मोह=सब कथा कहने के बाद सुदामा ने अपने उस भ्रम की बात कही जो उन्हें कृष्ण के, प्रत्यक्ष रूप से विदाई के अवसर पर कुछ न देने से, द्वारिका से लौटते समय हो गया था। कृपानिधि=दयासागर। भगत-हित=भक्त-हितकारी। चिदानन्द=चित्—आनन्द। भगवान् को सत्

(सत्य), चित् (चैतन्य) और आनन्द कहा गया है क्योंकि वे परम सत्य, परम चेतन और परम आनन्द हैं।

व्याख्या—इस प्रकार पूरी कथा कह जाने के बाद सुदामा ने अपने उस भ्रम की भी बात कही (जो उन्हें कृष्ण के, प्रत्यक्ष रूप से विदाई के अवसर पर कुछ न देने से, द्वारिका से लौटते समय हो गया था और जिस भ्रम के कारण उन्होंने श्रीकृष्ण को एक छोटा-सा निरापद शाप भी दे डाला था।) पर आज उन्होंने स्वीकार किया कि श्रीकृष्ण भक्तों के हितकारी हैं और चैतन्य तथा आनन्द के भंडार हैं।

(११६) **शब्दार्थ**—साजवाज=साज-सामान; सजावट। बाजि=घोड़ा। गज=हाथी। राजत=शोभा दे रहा है। बहल=बहली; सुन्दर छायादार बैलगाड़ी। शुभ-सिंहासन=मंगलमय सिंहासन। चौक प्रति=प्रति चौक में; प्रति आँगन में। लहलहैं=लहलहा रहे हैं; हरे-भरे हो रहे हैं; झूम रहे हैं। पाकसासन=इन्द्र। सहल=साधारण; तुच्छ। लागत सहल हैं=तुच्छ लगते हैं। लौं=तक।

व्याख्या—कवि कहता है कि श्रीकृष्ण ने सुदामाजी को जो सम्पत्ति दी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। अब सुदामाजी के पास सब तरह से सजे हुए हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और छायादार बैलगाड़ियाँ हैं। बैठने के लिए रत्नजटित सुन्दर सिंहासन है। प्रत्येक महल के आँगन में कामधेनु और कल्पतरु हैं। उनके सारे महल सोने के बने हैं। (और कहाँ तक कहा जाय) सुदामाजी के दास-दासियों के अभूषण एवं वस्त्रों को देख कर देवराज इन्द्र के ऐश्वर्य भी तुच्छ लगते हैं।

विशेष—इस कवित्त में वर्णनात्मक शैली का सौष्ठव विशेष रूप से द्रष्टव्य है। कवि दीन दयालु श्रीकृष्ण द्वारा प्राप्त सुदामा के अपार धन-ऐश्वर्य का वर्णन करने में पर्याप्त सफल रहा है। उसने अपने वर्णन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अनुप्रास अलंकार का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है। उसका शब्द-

चयन सराहनीय है।

(११७) **शब्दार्थ**—वाजिसाला=अश्वशाला, घुड़साल। गजसाला=गजशाला—हथसार। गजराज=ऐरावत। ब्रजराज=श्रीकृष्ण। बानक=श्रृंगार। झरोखन मैं=खिड़कियों में। झिम-झिम=धीरे-धीरे। झूमक=एक प्रकार का आभूषण जिसे स्त्रियां कानों में पहनती हैं। मुकतान—मोतियां। बिधान—व्यवस्था।

व्याख्या—कवि कहता है कि श्रीकृष्ण के दान का ढंग विचित्र है। (देखिये न!) श्रीकृष्ण से भेंट होने पर सुदामा का दुःख-दारिद्र्य न जाने किधर चला गया। (कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण से भेंट होते ही सुदामा का दुःख-दारिद्र्य दूर हो गया।) (अब तो) श्रीकृष्ण के समान ही सुदामा के पास भी हथसार और घुड़साल हैं। उनकी सवारी के लिए हर समय गजराज (ऐरावत) तयार रहते हैं। उनके सोने के महल बहुत कलापूर्ण रीति से बने हैं, उनमें मणियां जड़ी हैं और उनके झरोखों में हीरे और लालों के साथ-साथ मोतियों की झालरें झूम रही हैं। इन सबको देख कर देवताओं के मन भी मुग्ध हो जाते हैं।

विशेष—इस कवित्त में भी मित्र-वत्सल श्रीकृष्ण की अपार कृपा से मिले सुदामा के धन-वैभव का वर्णन हुआ है। कवि वर्णनात्मक शैली में उस भव्य वैभव का निरूपण करता है। उसी के अनुरूप शब्द-सम्पदा अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का प्रयोग करता है।

(११८) **शब्दार्थ**—सुबरन=सुवर्ण—सोना। पौरि=द्वार; फाटक। मनि-मंडप=मणियों से बने मंडप। वर=सुन्दर। खवास=सेवक; खानसामा। मो=मुझ। चौंर ढरते=चँवर डुलाते। पै=पर। राज-सामा=राज-समाज; राज-वैभव। एती=इतनी।

व्याख्या—सुदामा अपनी पत्नी से कहते हैं—हे पतिव्रता! यदि तुम्हारे उपदेशों को न मान कर मैं द्वारका न जाता तो ये सोने के बड़े-बड़े महल, द्वारों पर रखे हुए मणियों से जड़े कलश, बैठने के लिए रत्नजटित सिंहासन, चँवर

डुलाने के लिए बहुत से दास और रत्नों से भरे भंडार, मुझे स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होते। यदि तेरे उपदेशों को न मान कर मैं द्वारिका न जाता तो श्रीकृष्ण मुझ पर इतनी कृपा नहीं करते।

विशेष—इस कवित्त में सुदामा अपनी पत्नी सुबुद्धि के प्रति आभार प्रकट करते हैं, उसी की सद्प्रेरणा से वे मित्र-वत्सल श्रीकृष्ण के पास द्वारिकापुरी जाते हैं और उन्हें अपार धन-सम्पत्ति प्राप्त होती है। अनुप्रास अलंकार की छटा इस छन्द में भी यत्र-तत्र देखी जा सकती है।

(११९) **शब्दार्थ**—अम्बर= वस्त्र। प्रभुता =ऐश्वर्य। सुरपति=इन्द्र।

व्याख्या—(विश्राम करने के बाद) सुदामाजी सुन्दर वस्त्रों को धारण कर सिंहासन पर आ कर बैठे। उस समय उनकी प्रभुता देख कर इन्द्र भी लज्जित हो गये।

(१२०) **शब्दार्थ**—कै=या; अथवा। हति=थी। छानी =झोपड़ी। पनही=जूते। जुरतो=जुटता था। परताप=प्रताप। दाख=द्राक्षा; अंगूर।

व्याख्या—(कवि सुदामाजी की विगत एवं वर्त्तमान दशा की तुलना करते हुए कहता है—) द्वारिका जाने के पूर्व उनकी टूटी-फूटी झोपड़ी थी, आज उनके सोने के महल हैं। पहले (निर्धन और साधनहीन होने के कारण) कहाँ वे नंगे पैर रहते थे, आज उनकी सवारी के लिए गजराज सजे हुए हैं। पहले कहाँ कठोर पृथ्वी पर बिना बिछावन के ही वे रात काट लेते थे, आज कोमल सेज पर भी उन्हें नींद नहीं आती। पहले कहाँ उन्हें कोदों-साँवाँ-जैसे मोटे अनाज भी भर पेट नहीं मिलते थे, आज भगवान् की कृपा से उन्हें इतना धन मिल गया कि दाख-जैसे मेवे भी (उन्हें) अच्छे नहीं लगते।

विशेष—इस सवैया छन्द में सुदामा के गत दारिद्रय और दीन दयाल श्रीकृष्ण की अपार कृपा से प्राप्त धन-वैभव का मार्मिक वर्णन हुआ है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है, इसीसे वह अत्यन्त उपयुक्त तथा सार्थक शब्दों के चयन तथा उनके प्रयोग की दक्षता प्रकट करता है। अनुप्रास अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग भी उसके वर्णन को प्रभावशाली बनाता है।

(१२१) **शब्दार्थ**—जदुबंस-मनि=यदुवंशमणि—श्रीकृष्ण। अनुकूल=प्रसन्न। बरषहिं=बरसते हैं।

व्याख्या—सुदामा पर श्रीकृष्ण की दया देखकर देवगण आकाश से फूलों की वर्षा करते हैं और कहते हैं—दरिद्रों पर दया करने वाले श्रीकृष्ण धन्य हैं; सुदामा अपनी पत्नी-सहित धन्य हैं।

□□□

परिशिष्ट

पाठ-भेद

'सुदामा-चरित' की कुछ प्रतियों में निम्नलिखित छन्द भी मिलते हैं :

मंगलाचरण

छन्द १, २, ३ के स्थान पर निम्नलिखित प्रथम दो छन्द मिलते हैं :

गनपति कृपानिधान, विद्या, वेद, विवेक जुत ।
देहु मोहिं बरदान हर्ष सहित हरिगुन कहौं ।।१।।
हरि चरित्र बहु भाई सेस दिनेस न कहि सकैं ।
प्रेम सहित चित लाइ सुनौ सुदामा की कथा ।।२।।

सुदामा

चंद को मित्र चकोर सदा तेइ भोजन आग विरंचि ने दीनो ।
पंकज कौ हितु द्यौसपती हिम जारत ताहि यहै प्रन लीनो ।।
कर्मबली सुनु री अबला ! नित संग रहै सबकै पुर तीनो ।
लच्छिमी-नाथ सखा जिनके तिनके घर बास दरिद्र ने कीनो ।।३।।

दोहा

मान-बड़ाई प्रेम-रस गरु आपन औ नेहु ।
ये पांचौ तबही गये जबै कही कछु देहु ।।४।।

कवित्त

स्याम सों मिताई मैं तो जब ते जताई यासौं,
तबहीं ते मेरे पाछे कढ़िबे को परी है।
याके हँसि बोले हौं न जानत हौं और दुख,
कालिका - निकाई राम ! वहै क्रोध भरी है।
सेवा छाँड़ि दई आगे लठिया लै ठाड़ी भई,
हरि पै चलाइबे की कथा कंठ करी है।
बठत, उठत, न्हात, खात, सोए आधी रात,
ऐसी सावधान ज्यौं घरावत की धरी है ॥५॥

दाम ही सों मान औ बड़ाई जस दाम ही सों,
दाम ही सों दैबो लैबो दाम ही सों काम है।
दाम ही सों तिथिव्रत नेमधर्म दाम ही सों,
दाम ही सों देवपूजा दाम ही सों नाम है।
दाम ही सों जग में फिरत कवि पंडित हू,
जापै नहिं दाम ताको सूखि जात चाम है।
राजा और राव बादसाहन को कौन गिनै,
मेरे जान बीस बिसें दाम ही में राम है ॥६॥

पिता निज पुत्र त्यागै भाई नहिं साथ लागै,
नारी मुख देखि भागै पूछत न बात है।
चाचा हू चबाव करै मां बहन नित्य लरै,
भोजन रिसाय धरै कूकर ज्यौं खात है।
लोग कहैं कूर भए भाई सब दूर भए,
बृथा जग जन्म जात पाछे पछतात है।
सास औ ससुर दैया लेत न बलैया मैया,
आज के जमाने में रुपैया करामात है ॥७॥

दोहा

मान बड़ाई प्रेमरस गरु आपन अरु नेहु ।
ये पांचौ तबही गए जबहि कही कछु देहु ।।८।।

कवित्त

चल्यौ है सुदामा कहै बात घर रामजी सों,
मांगिहौं न दाम तासों सांची ही कहत हौं ।
जो पै मोहिं आपहिं ते बूझिहैं बैकुंठनाथ,
तब हों कहौंगो प्रभु खुसी ही रहत हौं ।
अबहूँ बिचारि दुखे सुखे दिन टारि कित,
पठवै मुरारि जो पै आपदा लहत हौं ।
बिना दाम धाम फिरि ऐहौं भेंटि स्यामजी सों,
तेरे कहें राम की सो लठिया गहत हौं ।।६।।

दोहा

मो मरने को नेम है मरूँ तो हरि के द्वार ।
कबहूं तो हरि पूछिहैं कौन मरो दरबार ।।१०।।

कवित्त

काँपै सुरपति नरपति काँपे ठौर-ठौर,
आगम जनायो द्विजवंत जिय बामा के ।
छाँड़ि दई आस कइलासहू की महा ईस,
सोच ब्रह्मादिकहू सकल सुखधामा के ।
डरपे कुबेर डगमगत सुमेर भए,
जानि डर कर्‌यो राम गुनकर नामा के ।
एते हहराने घहराने हरि हितू जानि,
द्वारिका की ओर पग धरत सुदामा के ।।११।।

दोहा

करि प्रनाम गनपति सुमिरि पहुँचि गए हरि द्वार।
देखि भीर सब नृपन की लागे करन बिचार ॥१२॥

यह सुनि ड्यौढ़ी पै कह्यो द्वारपाल सकुचात।
महाराज द्विज एक को कहत सन्देस लजात ॥१३॥

सुन्यौ सुदामा नाम जब तब सुधि रही न और।
उठि दौरे परजंक तें तजि तरुनिन को झौर ॥१४॥

सुन्दर कनक परात में धर्‌यौ सलिल ज्यों दास।
पगधोवन कों आप ही बैठे जगत निवास ॥१५॥

कुसल क्षेम पूछत लगे कहौ सुदामा मित्र।
भाभी ने कछु कहि दियौ भाखो परम विचित्र ॥१६॥

तुम तौ चतुर सुजान हौ जानत मो मन चित्त।
एक मास में द्वै परै सौ माकों है नित्त ॥१७॥

तब तौ दिन कछु और हे अब आए कछु और।
नित होवैगी द्वादसी तुम चित्त राखौ ठौर ॥१८॥

गुरु सेवा दुर्लभ महा चित दै करै जो कोय।
जो मन में इच्छा करै सो सब पूरन होय ॥१९॥

पवन झकोरत तीव्र सों सीत भयो अधिकाय।
काठभार मस्तक धर्‌यौ हाकों लियो छिपाय ॥२०॥

बहुत भाँति रक्षा करी आप रहे दुख माहिं।
तुम्हरी प्रीति अनन्त है उऋन होहुँ मैं नाहिं ॥२१॥

सवैया

हाथ गह्यौ प्रभु को कमला कहै, नाथ कहा तुमनै चित धारी।
तन्दुल खाय मुठी दुई, दीन कियो तुमने दुई लोक-बिहारी॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहां निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी॥२२॥

दोहा

करि आचमन मुख धोय के, पान खाय सुख पाय।
पौढ़े पलका पै तबैं कृष्ण पलोटैं पांय॥२३॥
बस्त्रादिक बहु भांति के, पहिराए सुखदाय।
करि प्रनाम कर जोरि कै, बोले त्रिभुवन राय॥२४॥

सवैया

धन्य कहा कहिए द्विजजू तुम सों जग कौन उदार प्रवीनो।
पिछली प्रीति निबाही भली विधि दोष निवारिकै रोष न कीनो।
हौं द्विज के चरणोदक हेतु अजन्म कहाय कै जन्म सुलीनो।
आवन कै निज पावन सो यहां, मोसो अपावन पावन कीनो॥२५॥

दोहा

नित नित सब द्वारावती दिखराई प्रभु आप।
भले बाग अनुराग सह जहां न व्यापै ताप॥२६॥

परम कृपा दिन दिन करी कृपानाथ जदुराय।
मित्र भावना बिस्तारी दूनो आर भाय॥२७॥

चिंता करि सोवत भयो देख्यौ सपन विनीत।
देव सकल आए गहुरि संपत लिए पुनीत॥२८॥

आज्ञा दई गुपाल जू बिसकर्मा तुम जाहु।
लाइ बिभौ दुइ लोक को नगर सुदाम बसाहु॥२९॥

रैनि मध्य सब लाइकै करि दीजौ इकठौर।
हय गयंद रथ पालकी बिसकर्मा सिरमौर ॥३०॥

कवित्त

कह्यौ बिस्वकरमा कों हरि तुम जाय करि,
नगर सुदामा जी को रचौ बेगि अबहीं।
रतनजटित धाम सुबरनमई सब,
कोट औ बजार बाग फूलन के तबहीं।
कल्पबृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे,
कीजिये अपार दास दासी देव छविहीं।
इंद्र औ कुबेर आदि देवबधू अपसरा,
गंधरव गुनी जहां ठाढ़े रहैं सबहीं ॥३१॥

दोहा

दंडवत करि बहु भांति सो आज्ञा श्री जदुराय।
बिभौ सौंज सब लै चले मंदिर रचे बनाइ ॥३२॥

सवैया

आए हौ आज कै कालि अबै तुम जाहुगे पर्सों कि नर्सों अबारे।
पत्र लिखौं सोइ मित्र हमारे कहां उतरौगे जु जाग तुम्हारे॥
मैं तौ रहौं दरबार के भीतर आवत हौं कबौं सांझ सबारे।
मूरख मित्र की प्रीति सुनौ जहां काग उड़ै सोइ जग्ग हमारे ॥३३॥

दोहा

गोपुर लौं पहुँचाय कै, फिरे सकल दरबार।
मित्र वियोगी कृष्ण के, नेत्र चली जल धार ॥३४॥

प्रीति आरसी विमल है सब कोउ सेवै जानि।
कपट मोरचा लगत ही होत दरस की हानि ॥३५॥

रहियो आवत जात इत कहत न लागी लाज ।
ऐसे आवन जान तें हौं अब आयौ बाज ॥३६॥

इन सोचन सोचत चले हरि को अति दुख मानि ।
घर की सुधि बँम्हनै नहीं दीन्हीं सुख की खानि ॥३७॥

कवित्त

जगर-मगर जोति छाय रही चहुं ओर,
अगर-बगर हाथी घोरन कौ सोर है।
चौपर को बनो है बजार पुनि सोरन के,
महल दुकान की कतार चहुं ओर है ॥
भीर-भार धकापेल चहुं दिसि देखियत,
द्वारिका तें दूनों यहाँ प्यादन कौ जोर है ॥
रहिबो को ठाम है न, काहु सों पिछान मेरी,
बिन जाने बसे कोउ हाड़ मेरे तोरे है ॥३८॥

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन मैं,
वेई सरवर हँस बोलन-मिलन कों।
वेई हेम-रिन दिसान दहलीजन मैं,
वेई गजराज हय गरज पिलन कों।
द्वार द्वार छरी लिए द्वारपौरिया हैं खरे,
बोलत मरोर बरजोर त्यों झिलन कों।
द्वारिका तें चल्यौ भूलि द्वारिका ही आयौ नाथ,
मांगियो न मो पै चारि चाउर गिलन कों ॥३९॥

फूटी एक थारी बिना टोंटनी की झारी हुतीं,
बांस की पिटारी औ कथारी हुती टाट की,
बेंटे बिन छुरी औ कमंडल सौ टूक बहो,
फटे ते पाये पाटी टूटी एक खाट की ।

पथरौटा काठि को कठौता कहुं दीसौ नाहिं,
पीतर को लौटा हो कटोरा हौ न बाटकी।
कामरी फटी सी हुती डोंड़न की माला ताक
गोमती की माटी की न सुद्धि कहूं माटकी ॥४०॥

दोहा

जित जित बांमन जात है तित तित के नर नारि।
पायं गहत हैं बिप्र के बहु पूँछत सुभकारि ॥४१॥

गए हुते द्वारावती मिलिबे जदुकुलराय।
दीन्हो कह प्रभु नैं तुम्हैं हमकों देहु दिखाय ॥४२॥

बिप्र सुदामा को नगर है यह चतुर सुजान।
करी कृपा यह कृस्न नै दीन्हौं द्विज को दान ॥४३॥

दै खै कहा गुपाल की गुप्तदसा द्विजदीन।
जौ लौं प्रकट भयो नहीं तौ लों रह्यो मलीन ॥४४॥

हय गयंद रथ पालकी मनिमँत औं पट कोट।
सहस संख की संपदा द्वारावति लगि छोट ॥४५॥

कवित्त

ढारि कै उठाई बनिआई के तेऊ दिनन,
हिये सूलहू न आई रही तीनि कोने की।
जहां लगे हीरालाल थारे औ पिटारे रानी,
बैठी तन गोरे बसै थोरी रही जोने की।
सबसों पुकारत हौं मारत हौं पेट गहि,
बेगि डारौ टारि यह बात नाहीं होने की।
केते घर छोड़ि मो गरीब ही सों बैर कियो,
मेरी मढ़ी ढाहि गढ़ी कौने करी सोने की ॥४६॥

चौंतरा उजारि कोऊ चामीकर-धाम कियो,
छानी तो उपारि डारि छाई चित्रसारी जू ।
जौ हौं होतो घर पै तो काहे को उठन देतो,
होनहार ऐसी खोटी दसाई हमारी जू ।
हौं तो हो न, काहू लोभ काहू को दिखायौ वाहि,
महल उठाय लयो हाय ! सुखकारी जू ।
लामी लूमवारी दुःख सूल को दलनहारी,
गैया बनवारी काहू सोऊ मारि डारि जू ॥४७॥

दोहा

द्वारपाल त्रिय एक सों कहि पठयो यह बात ।
सुनत चली आनंद भरी पुनि पुनि पुलकित गात ॥४८॥

सवैया

तोरि डारी झोपरी करे हैं रुचि धौरहर,
सुरपुर ध्रुवलोक गार गार ग्रसे हैं ।
अंग अंग पांति पांति लागे मनि मानिक हैं,
संपदा कि भीतिन प्रबाल लाल लसे हैं ।
कृष्न की कृपा तें रिद्धि सिद्धिन समेत सब,
कामधेनु कामतरु ते ही आनि फँसे हैं ।
हसि हसि बोलति सुदामा जू की बामा प्यारी,
घरै आवौ घर बसे खासे घर बसे हैं ॥४६॥

मैं घर भुलानो भूलि कौन के महल आयौ,
जहां लागे लाल जाल बिद्रुम महामनी ।
कौन की विचित्र नारि करै मनुहारि मैं तो,
सकौं न निहारि नखसिख सिद्धि सौं सनी ।

द्वारिका बिहारी गिरधारी सों मिलन गयौ,
भयौ नहीं काम कछु आय जिय सों बनी।
जहां हो निपुन धाम तहां मेरो कौन काम,
कांपै त्यों-त्यों ब्राह्मन बुलावै ज्यों-ज्यों ब्राह्मनी।।५०।।

दोहा

कही कथा सब आदि की जहि बिधि सिक्षा दीन्हि।
सुहिध सुदामा कों भई परी ब्राह्मनी चीन्हि।।५१।।

चीन्हि ब्राह्मनी आपनी कियो कृष्न को ध्यान।
मो जड़ पर ऐसी कृपा कीन्हीं कृपानिधान।।५२।।

सवैया

चंपे की पिराका है कि सोने की सिरका है कि,
संपा ही को भाग है कि कला कोऊ न्यारी है।
सुकवि नरोत्तम कै भूतल को भूषन है,
कै चकोर पूषन कि पुन्य की उजारी है।
मेरी अभिलाषा है कि कामतरुसाखा है कि,
गीरवान भाषा है कि सुधाकंद क्यारी है।
राग है कि रूप है कि रस है कि जस है कि,
तन है कि मन है कि प्रान है कि प्यारी है।।५३।।

दोहा

मनमंडित थारा कनक सूपोदन लै राखि।
सुरभीपय बेला पृथक् धर्‌यो कृष्नजू भाखि।।५४।।
कंदजुक्त ज्याउर धरी पछियाउर बहु भांति।
कहि न जाति मुख एक सों बहु बिजति की जाति।।५५।।

कवित्त

कृपा कीन्हीं भारी मानि यारी गिरधारी तुम्हैं,
सुख के समूह चले आवैं छितिछोर तें।
दसा जो हमारी सोऊ अधिकारी सों तिहारी,
प्यारे भारी जानि कै निहारि कृपा कोर तें।
पंडित हौं बड़ो कहा भूले गज बाजि देखि,
कृष्न की कृपा तें धन होत बहुजोर तें।
रुक्मिनीरमन के चरन दरसन ही ते,
सबै सुख बरसै है आनि चहुं ओर तें ॥५६॥

दोहा

सोचत जो आनंद करी भरी मोद मन माहिं।
भक्ति करी यदुनाथ की अब संसै कछु नाहिं ॥५७॥

बिप्र सुदामा सहित तिय उमगे परमानन्द।
नितप्रति सुमिरन करत हैं हिय धरि करुनाकंद ॥५८॥

कृष्न सुदामा मित्रई कहो नरोत्तमदास।
कहत सुनत जो हित करै ताको कबहुँ न त्रास ॥५९॥

कुण्डलिया

चरित सुदामाकृष्न को पढ़ै गुनै करि हेत।
ताकों सगरी संपदा कृष्न कृपा करि देत।
कृष्न कृपा करि देत बात सांची यह मानौ।
यामें कछु न असत्य सत्य करि सत्य सु जानौ।

मानौ सत्य प्रमान झूठ जग है न कृष्न को।
अनुभवफल सो लहै सुदामा चरित कृष्न को ॥६०॥

दोहा

बिप्र सुदामा की कथा, कहैं सुनैं चितलाय।
ताको श्री जदुबीरपति, निसदिन रहैं सहाय ॥६१॥

